लेनिन और भारतीय साहित्य

[लेनिन जन्म शताब्दी लेख-संग्रह]

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
नयी दिल्ली

नवंबर १९७० (अग्रहायण १८९२)

रु० २.५०

सचिव, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-५, ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-१६ द्वारा प्रकाशित तथा हिंदी प्रिंटिंग प्रेस, क्वींस रोड, दिल्ली-६ द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

विश्व इतिहास में यह एक संयोग की बात है कि गांधी और लेनिन जन्मशती एक ही वर्ष में घटित हुई। वस्तुतः दोनों महापुरुष एक देश के न होकर पूरे संसार के महामानव सिद्ध हो चुके हैं।

लेनिन जन्म शताब्दी भारतवर्ष में सर्वत्र मनाई गयी। शिक्षा मंत्रालय ने साहित्य अकादेमी और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के माध्यम से अनेक परिसंवाद आयोजित किये और उन परिसंवादों के लिए लिखित और पठित व्याख्यानों के अनेक प्रकाशन भी संभव हुए। यह कार्य भारत की अनेक भाषाओं में हुआ। प्रायः विषय लेनिन और भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य में ही सोचा-विचारा गया।

साहित्य अकादेमी की ओर से हिंदी भाषा और साहित्य के संदर्भ में लेनिन जन्म शताब्दी परिसंवाद जुलाई १६७० में इंदौर में आयोजित हुआ। इसके अंतर्गत हिंदी, उर्दू और मैथिली के पांच विद्वानों ने निबंध पढ़े, जिनके नाम एवं लेख क्रमशः इस प्रकार हैं—'लेनिन और भारत'—डा० शिवमंगल सिंह 'सुमन', 'लेनिन और भारतीय साहित्य'—नागार्जुन, 'लेनिन और भारतीय साहित्य'—डा० नामवर सिंह, 'लेनिन का भारतीय साहित्य पर प्रभाव'—रमेश चतुर्वेदी, और 'एक अजीम बागी की विरासत'—डा० मुहम्मद हसन। इन विद्वानों ने अपने लेखों और विचारों से लेनिन और भारतीय साहित्य पर समुचित प्रकाश डाला। वस्तुतः लेनिन का प्रभाव भारतीय साहित्य पर विचार के धरातल पर अधिक पड़ा और यह भी स्पष्ट है कि यह प्रभाव कई काल-खंडों और कई रूपों में पड़ा है।

आशा है इस लघु पुस्तक की सामग्री हिंदी के पाठकों को प्रेरणा देगी और लेनिन के महान व्यक्तित्व के प्रति उन्हें जागरूक बनायेगी।

अनुक्रम

दिलाने और शांति तथा समता का प्रसार करने के लिए दीवाने थे।

मानवता के इस महाअभियान मे भारत और रूस का तभी से भाई-चारा स्थापित हो गया था। ७ नवबर १९१७ की क्रांति के एक वर्ष बाद ही २३ नवबर १९१८ को पहला भारतीय प्रतिनिधि मंडल लेनिन से मिला था और मई १९१९ मे एक और प्रतिनिधि मंडल, जिसमे मौलवी बरकतुल्लाह, राजा महेंद्रप्रताप, एम० टी० आचार्य तथा अन्य लोग उनसे मिले। परतु इसके बहुत पहले से लेनिन भारतीय जनता को साम्राज्यवादी शोषण से मुक्ति दिलाने के लिए व्यग्र हो उठे थे। स्टटगार्ट की अंतर्राष्ट्रीय सोशलिस्ट काग्रेस के अवसर पर १९०७ मे लेनिन ने भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अत्याचारो के सबध मे लिखा था। उस समय संभवत भारतीय प्रतिनिधि मदाम कामा और वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय उनसे मिल चुके थे। उसी समय से भारत के मुक्ति आदोलन के साथ सक्रिय सहानुभूति रखनेवालो मे लेनिन और रोजा लक्जमबर्ग का नाम लिया जाने लगा था। ३६ भागो मे प्रकाशित लेनिन के संपूर्ण ग्रथो के तीसरे भाग से अंतिम भाग तक भारत का उल्लेख पाया जाता है। इस्करा (चिनगारी) के प्रथम अक मे ही १८५७ के विद्रोह को भारत की पहली आजादी की लडाई की सज्ञा दी गयी थी, जिसका अंग्रेजो ने सिपाही विद्रोह के नाम से मखौल उडाना चाहा था। लोकमान्य तिलक की गिरफ्तारी के विरोध मे बबई मे जो छ दिन की ऐतिहासिक हडताल हुई थी, लेनिन ने उसका भारत मे सर्वहारा वर्ग के जागरण के रूप मे स्वागत किया था। लोकमान्य ने जनवरी १९१८ मे 'केसरी' मे 'रूस के महान नेता लेनिन' नामक लेख मे लेनिन को विश्व के दीन-दुखियो का मुक्तिदूत कहा था। १९२० मे लेनिन ने स्पष्ट कहा था कि विद्रोही एशिया की रहनुमाई भारत कर रहा है। जिसमे एक ओर तो उन्होने कारखानो मे काम करनेवाले मजदूरो तथा रेलवे के मजदूरो की हडताल को क्रांति के प्रथम आह्वान की सज्ञा दी और दूसरी ओर ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा जलियानवाला बाग अमृतसर मे १९१९ के हत्याकाड की भर्त्सना की थी। अक्तूबर क्रांति ने भारत के स्वतत्रता आदोलन के क्रांतिकारी देशभक्तो को बडी प्रेरणा और शक्ति दी। भारत के मुक्तिपथ मे इस महान ऐतिहासिक घटना ने आग मे घी का काम किया। उस समय लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, रवींद्रनाथ

टैगोर, लाल प्रभुत नारायण राय, सुभाषचन्द्र बोस, लाला लाजपतराय, चितरंजन दास, आचार्य नरेंद्र देव, सरदार भगतसिंह आदि सभी ने इसका अभिनंदन किया।

समस्त विश्व की साम्राज्यवादी और पूंजीवादी शक्तियां इस महान मुक्ति की सफलता से इतनी आतंकित हो गयी थीं कि उन्होंने लेनिन को दानव, राक्षस और आततायी के रूप में चित्रित किया। ऐसा ही प्रयत्न महात्मा गांधी की शुद्ध सात्विक मूर्ति को भी विकृत करने के लिए किया गया था। परन्तु आश्चर्य की बात है कि जिसे सबसे अधिक खूंखार प्रमाणित करने का प्रयत्न किया गया था, उसका सबसे पहला फरमान विश्व में शांति की स्थापना के उद्‌घोष से प्रारंभ हुआ। ७ नवंबर को क्रांति हुई और ८ नवंबर को लेनिन की सबसे पहली घोषणा युद्ध को समाप्त करने और शांति की स्थापना के लिए थी, जिसमें युद्ध-रत सभी राष्ट्रों से प्रार्थना की गयी थी कि वे बिना किसी शर्त के युद्ध समाप्त कर दें। न कोई किसी के देश का कोई भाग हड़पे, न किसी प्रकार का हरजाना मांगे। दूसरी घोषणा (जिसमें रूस के प्रत्येक प्रदेश को प्रजातंत्र घोषित करके इस बात की पूर्ण स्वतंत्रता दे दी गयी कि वे चाहें तो सोवियत संघ में सम्मिलित हों या न चाहें तो सार्वभौम स्वायत्त शासन के रूप में अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखें) ने तो विश्व की समस्त साम्राज्य लोलुप शक्तियों को स्तंभित कर दिया। एक बार तो सारा योरुप और अमरीका इस घोषणा से सिहर गया। जितने अंश में साम्राज्यवादी शक्तियों को इन घोषणाओं ने भयभीत कर दिया, उतने ही अंश में इससे योरुप और एशिया के समस्त पददलित देशों को नयी आशा और नये जीवन की अभूत-पूर्व प्रेरणा मिली। उस समय भारत के सभी राष्ट्रीय पत्रों ने मुक्त हृदय से इसका स्वागत किया। 'केसरी', 'ट्रिब्यून', 'वंदेमातरम' आदि ने बड़े ही भावपूर्ण अग्रलेख लिखे। 'माडर्न रिव्यू' ने फरवरी १९१९ के अंक में 'रूस का महान योगदान' नामक टिप्पणी में बड़े भावपूर्ण शब्दों में इसके ऐतिहासिक महत्त्व को प्रतिपादित किया। फिर तो लेनिन के उत्सर्गशील जीवन की जानकारी प्राप्त करने के लिए सारे देश में बाढ़-सी उमड़ आयी और अंग्रेजी के अतिरिक्त हिंदी, मराठी, तमिल, बंगाली और कन्नड़ में लेनिन के जीवन चरित्र धड़ाधड़ प्रकाशित होने लगे। हिंदी में रमाशंकर

अवस्थी ने 'बोलशेविक जादूगर' के नाम से १९२१ में पहली जीवनी लिखी, इसके पूर्व १९२० में 'रूस की राज्यक्रांति' के नाम से उनकी पुस्तक प्रकाशित हो चुकी थी। निबंधों के रूप में भी जवाहरलाल नेहरू, रवींद्रनाथ टैगोर, आचार्य नरेंद्र देव आदि रूस के संबंध में नवीनतम जानकारी प्रस्तुत कर रहे थे। एक ओर ब्रिटिश साम्राज्यवाद खोज-खोज कर इस नवोन्मेषी साहित्य को जब्त करने में दौड़धूप कर रहा था दूसरी ओर धड़ाधड़ लेनिन के कृतित्व के प्रति जनता अपनी जिज्ञासा-समाधान प्राप्त करने के प्रयत्न में तल्लीन थी। तमिल के सुब्रह्मण्यम भारती, भास्कर आदिमूर्ति, कन्नड के पुटुप्पा, अजीज लखनवी आदि ने लेनिन पर बड़ी सुंदर कविताएं लिखी। उर्दू में अजीज भोपाली और मराठी में रामकृष्ण गोपाल भिडे की जीवनियों ने बड़ी ख्याति प्राप्त की, जिनमें लोकमान्य तिलक और सेनापति बापट की विशेष प्रेरणा थी। यह सब जीवनियां लेनिन के जीवनकाल में ही प्रकाशित हुई।

लेनिन के प्रति स्वतंत्रता के सिपाहियों की भावना की झलक देने के लिए एक भारतीय और एक एशिया के सेनानी का उद्धरण ही पर्याप्त होगा। मोहम्मद यूनुस ने 'फ्राटियर स्पीकस', लाहौर १९४२, नामक पुस्तक के पृष्ठ १६६ पर लिखा है कि अब्दुल गफ्फार खां को दुनिया के विभिन्न इंकलाबों का इतिहास पढ़ने का बड़ा शौक है और ऐसा मालूम पड़ता है कि जिन लोगों ने उन्हें सर्वाधिक प्रभावित किया है उनमें महान क्रांतिकारी और महापुरुष लेनिन का बहुत बड़ा स्थान है। मैंने उन्हें एक बार कहते हुए सुना था, "इतिहास पढ़ो और तुम पाओगे कि कैसे शक्ति ने बहुत-से महापुरुषों को बदगुमान कर दिया। नेपोलियन ने अपनी सारी मुसीबतों और वायदों के बावजूद बादशाहत अख्तियार की और उसे अपने खानदान के लिए सुरक्षित करने की कोशिश की। रजाशाह और नादिरशाह मौका पाते ही उसके नशे में आ गये। वह बहुत आसानी से पैगंबर और खलीफाओं की तरह निस्वार्थ सेवा का रास्ता अख्तियार कर सकते थे परंतु बजाय उनके लेनिन ने इसकी मिसाल दुहराई और सदा सर्वशक्तिमत्ता के दंभ से बचे रहे जबकि ऐसा कर सकना उनके लिए बेहद आसान था।"

विश्व के महान लेखकों, विचारकों और क्रांतिकारियों ने बड़े अदब और सम्मान से इस मुक्तिदाता का अभिनंदन किया। अनातोले फ्रांस, रोमां

एक बहुत ही दिलचस्प पर करुणाविगलित घटना अभी प्रकाश में आयी है, जिसे भगतसिंह के मुकदमे की पैरवी करनेवाले वकील प्राणनाथ मेहता ने उद्घाटित किया है। उन्होंने वीरेंद्र सिंधु की याद्दाश्त से अपनी डायरी के जो विवरण दिये वह यहा ज्यों-के-त्यों उद्धृत हैं :

२२ मार्च १६३१: "जब मैं भगतसिंह की कोठरी से लौट रहा था जहा उनके दूसरे दो साथी भी आ गये थे, उन्होंने मुझे वापस बुलाया और कहा कि लेनिन के बारे मे बाजार मे एक नयी किताब आयी है। उन्होंने मुझसे इस पुस्तक की एक प्रति हासिल कर देने की प्रार्थना की। उनके स्वर मे व्यग्रता थी। उन्होंने कहा कि वह इस पुस्तक को पढने के लिए बेचैन थे।"

"और उन्हे अच्छी तरह मालूम था कि उन्हे राजगुरु और सुखदेव के साथ २४ मार्च १६३१ को सुबह फासी लगनेवाली है। उस समय तक किसी को यह नही मालूम था कि ब्रिटिश अधिकारियों ने २३ मार्च की शाम को ही इन देशभक्तों को फासी पर चढा देने की योजना बना ली थी, ताकि वे रात के अधेरे मे ही उनकी लाशों को ठिकाने लगा दें।"

२३ मार्च १६३१ · "भगतसिंह ने जो किताब मुझसे मगायी थी उसे मैंने ढूढा और स्वय उसे उनके पास तक पहुचाने का फैसला किया।"

"लेकिन भगतसिंह और उनके दोनों साथियों ने फासी से पहले किसी से भी मिलने से इकार कर दिया था, क्योंकि उनके मामले मे जेल के अधिकारियों ने जेल के कानूनों की व्याख्या बड़े कठोर ढग से की थी और कुछ इने-गिने निकट सबधियों के अतिरिक्त किसी को उनसे मिलने की इजाजत नही थी। इसके विरोध मे अपनी आवाज उठाने के लिए उन्होने किसी से भी मिलने से इकार कर दिया था।"

"मैंने सोचा कि यह तो बहुत बुरी बात होगी कि फासी पर चढ़ने से पहले उनके माता-पिता भी उनसे नही मिल पायेंगे। कुछ किया जाना चाहिए। मैं जेल अधिकारियों से मिला और उनमें कम-से-कम एक श्री

यत दर्ज करने के लिए उनसे मिलना चाहता हू तो वह मुझे उनसे मिल लेने देंगे। मैंने ऐसा ही किया और अत मे मुझे भगतसिंह की कोठरी मे पहुंचा

दिया गया। बाकी दोनों राजगुरु और सुखदेव को वहीं ले आया गया।

"तब तक मुझे यह नहीं मालूम था कि यह कैदियों के साथ मेरी आखिरी मुलाकात होगी और उन्हें अगले दिन सुबह के बजाय दो ही घंटे बाद फांसी पर चढ़ा दिया जायेगा।"

"लेकिन वातावरण में कुछ रहस्यमय बात थी, मानो कोई अपशकुन मंडरा रहा हो। उस दिन सभी कैदी अपनी-अपनी कोठरियों में थे और उनसे रोज की मेहनत भी नहीं करायी जा रही थी। यह बहुत ही असाधारण बात थी।"

"भगतसिंह ने जो किताब मंगायी थी वह मैंने उन्हें दी। किताब देखकर वह बहुत खुश हुए। मेरे हाथ से किताब लेते हुए बोले, मैं इसे रात में ही खत्म कर दूंगा इसमें पहले कि"

"उन्हें नहीं मालूम था कि वह किताब खत्म नहीं कर पायेंगे। बाहर आकर मुझे मालूम हुआ कि उन्हें उसी दिन शाम को फांसी दी जानेवाली है—अभी—"

"मुझे उनकी दूसरी चीजों के साथ यह किताब वापस मिल गयी—भगतसिंह ने जेल के अधिकारियों से कह दिया था कि सब चीजें मुझे दे दी जायें—"

वीरेंद्र सिंधु की पुस्तक के अनुसार जेल के एक वार्डर ने भगतसिंह के जीवन के अंतिम क्षणों का वर्णन इस प्रकार किया है—"उनके पास झिझकने के लिए कोई समय नहीं था वह अपने सबसे गहरे मित्र से मिल रहा था। वह लेनिन की जीवनी पढ़ रहा था जो उसके दोस्त प्राणनाथ उसे दे गये थे। उसने कुछ ही पन्ने पढ़े थे कि कोठरी का दरवाजा खुला। जेल का अफसर अपनी रोबीली वर्दी में वहां खड़ा था, "सरदारजी, आपकी फांसी का हुक्म, तैयार हो जाइए!" भगतसिंह के दाहिने हाथ में किताब थी। किताब पर से नजरें हटाये बिना ही उसने अपना बायां हाथ बढ़ा दिया और कहा, "एक क्रांतिकारी दूसरे क्रांतिकारी से मिल रहा है," फिर कुछ लाइनें और पढ़ने के बाद उसने किताब बंद कर दी और कहा, "आइये चलें।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण टीका-टिप्पणी से परे हैं। विश्व के बलिदानियों को सम्मिलित करना और आस्था इन पंक्तियों में समायी हुई है।

[1] देखिए, नरशिरोमणि पृ० १०१-१०२।

लेनिनग्राद में जब मैं स्मोलने गया जहां लेनिन अक्तूबर क्रांति के पूर्व पहले-पहल प्रकट हुए थे, जहां सर्वप्रथम समाजवादी सोवियत स्थापना की घोषणा की गयी थी तो वहां मुझे लेनिन के आह्वान का रिकार्ड सुनवाया गया और उनका निवास भी दिखलाया गया। उसी विशाल प्रासाद के एक कोने मे दो कमरो मे लेनिन अपनी धर्मपत्नी क्रुप्सकाया के साथ रहते थे। आधे कमरे मे एक पुराना सोफा सैट रखा हुआ था और लकड़ी का पार्टीशन देकर दो लोहे के पलंग बिछे हुए थे, जैसे कि प्रायः अस्पतालो के जनरल वार्ड में देखे जाते है, दोनो पर कारखाने की मोटी चादरें बिछी हुई थी, और एक-एक साधारण-सा तकिया, ओढ़ने को मोटे कंबल। इस सादगी को देखकर मुझे अचानक सेवाग्राम की याद आ गयी। आजादी के बाद लेनिन को भी मास्को आना पडा था और गाधीजी को भी दिल्ली। क्रुप्सकाया और कस्तूरबा का उत्सर्ग भी अपने-अपने परिवेश और सीमाओ मे बहुत कुछ समानता रखता था। क्रुप्सकाया लेनिन के विचारो के प्रसार और क्रातिकारी सगठनो को लेनिन के निर्देशो के अनुसार सचालित करने मे रात-दिन तत्पर रही और कस्तूरबा विदुषी न होने पर भी गाधीजी के प्रत्येक आंदोलन मे बहादुरी से भाग लेती रही और उनके आश्रम की व्यवस्था तथा जेलयात्राओ मे प्रत्येक क्षण उत्सर्ग करती रही।

गांधीजी के लिए लेनिन के हृदय मे बड़ा आदर था। इसकी कुछ झलक कोमारोव्ह के उन उद्धरणों में मिल जाती है, जिनमे उन्होंने मानवेंद्रनाथ राय के संस्मरणों का उल्लेख किया है। उन्होने लिखा है कि लेनिन गाधी को भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का सर्वमान्य नेता मानते थे। राय ने स्वयं लिखा है कि लेनिन से मेरे मतभेद का महत्वपूर्ण विषय था गाधी की भूमिका। मेरा यह कहना था कि गाधी राजनीतिक रूप से चाहे जितने भी क्रांतिकारी दिखलायी पड़ें धार्मिक और सांस्कृतिक पुनरुद्धारक होने के कारण उनकी सामाजिक भूमिका प्रतिक्रियावादी है। लेनिन का विश्वास था कि जन-आंदोलन के प्रेरक और नेता होने के कारण वह क्रांतिकारी हैं। "साधन और साध्य के संबंध में मतभेद होने पर भी गाधीजी ने १५ नवंबर १६२८ के 'यंग इंडिया' में लिखा था, "बोल्शेविज्म व्यक्तिगत संपत्ति के उन्मूलन के आदर्श से अनुप्राणित है। यह आर्थिक क्षेत्र में समानता के नैतिक आदर्श का प्रयोग है। और यदि यह उद्देश्य आत्मिक सद्भावना

आ गया है। इसीलिए कला की सूक्ष्म अभिव्यक्तियों के कायल न होते हुए भी वह उसे मान्यता देते रहे।

प्रथम महायुद्ध से १९३० तक भारत और रूस में विद्रोह और क्रांति की भावना अपने सर्वोच्च शिखर पर पहुंच गयी थी। इसीलिए बाल्शेविक क्रांति की आग अंग्रेजी अवरोधों के बावजूद भारत के क्रांतिकारियों को स्पर्श करने लगी थी। लेनिन और मार्क्स के विचार विदेशी प्रचार द्वारा नहीं बल्कि सर्वहारा वर्ग के प्रगतिशील संदेश से रूस में जन-मानस को स्पंदित करने लगे थे। भारतीय जनता को लेनिन और गांधी की सादगी, सचाई, निस्पृहता और सर्वस्व समर्पणशीलता ने सबसे अधिक आकर्षित किया था। विश्व के महान मुक्ति-आंदोलन के दोनों सर्वोच्च सजग ज्योतिर्मय प्रकाश-स्तंभ हैं और रहेंगे।

लेनिन और भारतीय साहित्य

नागार्जुन

वर्णाश्रमवादी अपनी परंपरा के अंतर्गत सौ-सौ जातियों-उपजातियों में विभक्त हमारा भारतीय समाज आज भी वर्ग-संघर्ष का तात्पर्य समझ नहीं पा रहा है। लगता है, इसमें अभी समय लगेगा।

ब्रिटेन की साम्राज्यवादी शक्तियों ने अपनी सुविधा के लिए कलकत्ता, बंबई, मद्रास, अहमदाबाद, कानपुर जैसे औद्योगिक अड्डों का विकास किया और उन्हीं के स्वार्थ से यहां मिलों-फैक्टरियोंवाला वणिक-वर्ग विकसित होने लगा, कुलियों, मजदूरों, कामगारों की संगठित जमातें भी इसी अभिनव परिस्थिति की देन थीं। दलाल, सटोरिये, ठेकेदार आदि पेशेगत और भी कई गोत्र आविर्भूत हुए। वक्त पर वेतन पाते जाने के अनूठे लालच में, और, क्रमिक तरक्की की डोर में बंधा हुआ, पूरा-का-पूरा बाबू-समुदाय अस्तित्व में आया। आई० ए० एस०, आई० सी० एस० आदि परम-अनुशासित किंतु महाप्रतापी अफसर-क्लास तो विशुद्ध गौरीनंदन ही होती थी, वह वर्ग तो समुद्र पार से ही ढलकर इधर आता था। जन-समुदाय को काबू में रखने के लिए साम, दाम, दंड, नीति के उनके अपने कानून थे। ये अंग्रेज शासक अशन सभी गुणों से समन्वित थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और चांडाल तक की विशेषताओं का अपना परिचय वह हमें दो-ढाई सौ वर्षों में भली-भांति दे गये हैं। वह बनिये अधिक थे कि शासक अधिक थे? लगता है, बनिये ही अधिक थे।

उन्हीं बनिया शासकों ने अपने सुभीते के लिए इस देश के अंदर कुछ-एक महानगरों को 'विकसित' किया। शक्ति नीयत से ही सही, आधे मन से ही सही, अपने उपयोग के लिए ही सही, किरानीगिरी के लिए ही सही, उन्होंने एक नये ढंग से हमें सिखा-पढ़ाकर तैयार किया। हम नये अर्थों में नागरिक बने। वकील, डाक्टर, इंजिनियर, प्रोफेसर, एडिटर और जाने

दो प्रतिशत ही प्रगतिशीलता की परिधि में लिया जा सकता है। मिथिला का समूचा क्षेत्र भी खेतिहर इलाका है। बड़े और मझोले भू-स्वामियों की अभिरुचियों में उनके शिक्षित पुत्रों की आशा-निराशा, राग-द्वेष, हर्ष-शोक आदि मिला देने से जितना-कुछ जो-कुछ रचनात्मक साहित्य तैयार हो सकता था, हुआ है और हो रहा है। विप्लवी युगबोध की दृष्टि से उसके मूल्यांकन का सवाल ही नहीं उठता।

यात्री, ललित, सोमदेव, राधाकृष्ण, रामकृष्ण झा, किसुन, विजयेंद्र नारायण दास, राधाकृष्ण चौधरी आदि के काव्य-साहित्य और कथा-साहित्य में लेनिन के विप्लवी दर्शन की आंशिक झलक जब-तब दिखायी पड़ी है। स्थूल और उद्देश्यहीन आधुनिकता, तिक्त-तीव्र युगबोध, वैयक्तिक आक्रोश, अतृप्त यौवन की मदग्रस्त चीत्कार आदि की अभिव्यक्ति हमारे मैथिली साहित्य में भी होती ही आयी है, उस पर ध्यान देना यहां आवश्यक नहीं है। यहां तो साहित्य के उस विशिष्ट अंग को लेना है जो बहुजन समाज की संघर्षशीलता को अभिव्यक्त कर सका हो।

चर्चा में यदि अपनी मातृभाषा से संश्लिष्ट साहित्य-मात्र को लेकर मैं चुप बैठ जाऊं तो अपना ही मन नहीं मानेगा। मैंने सदैव मैथिली और हिंदी को परस्पर पूरक माना है। साथ ही, मेरे रचनाकार को संस्कृत से भी आंतरिक लगाव है। मैं निःसंकोच इन तीनों भाषाओं का प्रतिनिधित्व करता आया हूं। फिर भी, यह सत्य है कि मेरी साहित्यिक उपलब्धि का ८० प्रतिशत हिंदी में ही रचित-प्रकाशित है। यह भी सत्य है कि लेनिन के विप्लवी दर्शन का यत्किंचित प्रभाव ही मैं अपनी चेतना में घोल सका हूं।

हिंदी में सनेही से लेकर सुदर्शन चक्र तक, निराला से लेकर सुमन तक, प्रेमचंद से लेकर तरुण कथाकार इसराइल तक, रामविलास शर्मा से कुंवरमिंह तक कवियों, कथाकारों और आलोचकों की विस्तृत नामावली है हमारे सामने। इन सभी के साहित्य पर लेनिन के जीवन का प्रभाव लक्षित होता है। यह प्रभाव हम पर हमेशा शुद्ध रूप में ही पड़ा हो, ऐसी बात नहीं है। आर्थिक-सामाजिक परिवेशों की अनूठी हदबंदियों के कारण, वामपंथी नेतृत्व की पंगुता के कारण, क्षुद्र स्वार्थों में डूबी

हुई पतनशील वैयक्तिकता के कारण, सर्वोपरि विराजमान मानोन्नत महाप्रभुओं की अदूरदर्शिता के कारण 'हर माल मे मिलावट, हर बात मे छलावा, हर कदम पर सुस्ती' हमारे लिए गुण धर्म बन गया है। बेचारे लेनिन का प्रभाव नाम-माहात्म्य की तरह हमारे साहित्य मे विद्यमान रह जायेगा, इतना तो खैर निश्चित है।

ऐसा तो नही कि लेनिन का प्रभाव हमारे जीवन पर पडा हो मगर साहित्य उससे अछूता रह गया ? या फिर वह प्रभाव साहित्य पर ही पडा, जीवन को बस छूकर निकल गया ? क्या वह प्रभाव बगाल की मिट्टी, केरल की मिट्टी पर और बगला-मलयालम के साहित्यों पर पडा लेकिन हमारे हिंदी क्षेत्र व साहित्य पर बस नाम-मात्र को ही पडा ?

फिर ऐसा तो नही कि आज से ५० वर्ष पहले—४० वर्ष पहले उस महामानव का जादू भारतीय युवको पर जिस रूप मे पडा, अब आगे भारतीय नौजवानों पर वह जादू ठीक उसी रूप मे न पडकर किन्ही और विलक्षण रूपों मे पड़ने आ रहा है ? कही ऐसा तो नहीं लग रहा है कि ५०-६० साल की उम्र के हम सयाने साहित्यकार लेनिन के सूत्रो का भाष्य मठाधीशों की रुचियो के अनुकूल ही करने लग गये है ?

विश्वकवि रवि ठाकुर सोवियत क्रांति की उपलब्धियों का साक्षात्कार करने के लिए सत्तर वर्ष की उम्र मे रूस गये। बहुतेरे मित्रो ने मना किया था, फिर भी गये। यह १९३० की घटना है। वहा के विराट परिवर्तनों को अपनी आखो से देखकर बुजुर्ग महाकवि बेहद प्रभावित हुए। एक पत्र मे उन्होंने लिखा

> "गूगे ने वाणी जीत ली है। अज्ञानियों के मस्तिष्क से पर्दा हट गया है। पगु अपनी शक्ति पहचान चुके है। जो पतन के गर्त मे पडे थे वे समूची मानव जाति की समानता का उद्घोष करते हुए अध-कूप से बाहर निकल आये है ."

इतिहास मे पहली बार लक्ष्मी ने विश्वमानव का [illegible]
गुरुदेव ने गद्गद् होकर सोवियत-समाज की सफ[illegible]
पत्रो मे किया।

यहां हमारे अंदर एक जिज्ञासा पैदा होती है—

क्या गुरुदेव स्वाधीनता-प्राप्ति के ३२ वर्ष बाद आज भारतीय जन-साधारण की उपलब्धियों के बारे में भी ठीक वैसे ही उल्लसित उद्‌गार प्रकट करते ?

जिस व्यक्ति ने अपने देश के बहुजन-समुदाय की विप्लवी क्षमता को नयी दिशा में मोडकर शोषण-मुक्त शासन-पद्धति का प्रवर्तन किया उस अनोखे कर्मवीर लेनिन के जीवन-दर्शन का प्रभाव यदि सचमुच हम पर पड़ा होता, तो निश्चय ही हमारे साहित्य में भी उस प्रभाव की झलक भूरि-भूरि दिखलायी पड़ती। फिर सोशलिज्म-कम्युनिज्म आदि शब्द मात्र मुग-मजन या श्रुतिरंजन होकर नहीं रह जाते।

कर्महीन चिंतन की हमारी भारतीय आदत बहुत पुरानी है। हजारों साल से यह आदत हमारी रग-रग में घुली हुई है। हमने जिस प्रकार 'धम्म-पद' और 'गीता' को घोल-घालकर पी लिया था, कबीर और नानक की साखियों को जिस प्रकार चाट गये, ठीक उसी प्रकार हमारी बातूनी प्रगति-शीलता लेनिन की सौंधी-चरपरी सूक्तियों का चर्वण कर रही है। हमने अपने मन-मंदिर में विप्लव के इस अवतारी पुरुष की प्रतिमा स्थापित कर ली है। आप कहें तो पूरा-का-पूरा प्रबंध-काव्य रच डालूं लेनिन पर! पुरस्कार की सीमाओं का ध्यान रखते हुए जाने कितना कुछ लिखा जायेगा इस अनूठे व्यक्तित्व पर। भारतीय साहित्य पर लेनिन का प्रभाव सूचित करनेवाले जाने कितने निबंध विगत महीनों में तैयार करवाये गये हैं। भारत की करोडों-करोड भूमिहीन जनों की बेबसी का जरा भी जिक्र इन निबंधों में नहीं है। जीविका-विहीन लाखों-लाख शिक्षित तरुणों का आक्रोश इनमें अचर्चित ही रह गया है। साम्प्रदायिकता की पूतना शिशु राष्ट्र को खुले आम अपना जहरीला दूध पिला रही है और हम बूढे प्रगतिवादी लाल गोमुखी के अंदर हाथ डाले लेनिन का नाम जपते चले जा रहे हैं।

वस्तुत लेनिन का प्रभाव भारतीय साहित्य पर कई काल-खंडों, कई स्तरों, कई रूपों में पड़ा है। यह सब साफ तौर पर अलग-अलग देखा जा सकता है। तिलक युग, भगतसिंह युग, सोशलिस्ट कांग्रेसियोंवाला युग

लेनिन और भारतीय साहित्य

नामवर सिंह

लेनिन में हिंदी-जगत की दिलचस्पी १९१७ की महान अक्तूबर क्रांति के बाद पैदा हुई। क्रांति में सामान्य भारतीय को आशा की एक नयी किरण दिखायी पड़ी; राष्ट्रीय स्वाधीनता के संघर्ष को बल मिला और समाजवाद की मंज़िल क़रीब मालूम हुई। क्रांति और क्रांति के नेता लेनिन के बारे में ज़्यादा-से-ज़्यादा जानकारी प्राप्त करने की उत्सुकता बढ़ी। अंग्रेज सरकार की कड़ी नाकेबंदी और झूठे प्रचार के बावजूद हिंदी ने इस दिशा में पहल करके गौरवशाली भूमिका अदा की। अभी तक जो जानकारी प्राप्त है उसके आधार पर यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि समस्त भारतीय भाषाओं में लेनिन के प्रथम उल्लेख का श्रेय हिंदी को है।

१९१९ में 'प्रताप' कार्यालय, कानपुर से 'साम्यवाद' नामक एक हिंदी पुस्तक प्रकाशित हुई जिसके तीन पृष्ठों में विशेष रूप से लेनिन की चर्चा है। पुस्तक में लेखक की जगह 'सामयिक विषयों का विद्यार्थी एक ग्रेजुएट' लिखा है और प्रकाशक का नाम है शिवनारायण मिश्र वैद्य। इस अज्ञात लेखक ने लेनिन के व्यक्तित्व के विषय में लिखा है "उनके दुर्दमनीय साहस, दृढ़ निश्चय और उनकी पूर्ण निस्पृहता के कारण उनके साथी उन्हें अत्यंत पूज्य भाव से देखते हैं।"

लेनिन के प्रथम उल्लेख के समान ही भारतीय भाषाओं में लेनिन की प्रथम जीवनी लिखने का श्रेय भी हिंदी को ही प्राप्त है। १९२१ में रमाशंकर अवस्थी ने कलकत्ता से 'बोल्शेविक जादूगर' नाम की पुस्तक प्रकाशित करवायी। रमाशंकर अवस्थी दैनिक पत्र 'वर्तमान' के संपादक और कानपुर के सुप्रसिद्ध पत्र 'प्रताप' में गणेशशंकर विद्यार्थी के सहकारी थे। 'बोल्शेविक जादूगर' से पहले १९२० में वह 'रूस की राज्य क्रांति' नामक एक और पुस्तक लिख चुके थे। 'बोल्शेविक जादूगर' में कुल ८५ पृष्ठ हैं। कवर पर

लेनिन का एक चित्र है जिसके नीचे दो पंक्तियों की यह कविता अंकित है :

यह है लेनिन विश्व विषमता हरने वाला।
साम्यवाद का सिंहनाद सा करने वाला॥

'बोल्शेविक जादूगर' उन दिनों की प्रचलित पत्रकारिता के अनुरूप काफी अतिरंजित शैली में लिखी गयी है जिसमें ब्यौरे पूरी तरह प्रामाणिक नहीं हैं। रमाशंकर अवस्थी की इन दोनों पुस्तकों की विशेषता यह है कि उनमें भारतीय परिवेश के अनुरूप किसानों के हित को प्राथमिकता दी गयी है। 'रूस की राज्य क्रांति' में उन्होंने यह लिखा है "लेनिन के हृदय में एक-मात्र अभिलाषा यह थी कि रूसी किसानों का उद्धार किया जाये।... रूस पहुंचकर लेनिन ने किसान-समुदाय को बिलकुल अपनी तरफ कर लिया।...इसका एक मुख्य कारण यह था कि लेनिन जमींदारों के हाथों से भूमि छीनकर किसानों के बीच में बांट देने का सिद्धान्त रखते थे।" इसके बाद 'बोल्शेविक जादूगर' में उन्होंने लेनिन के 'विश्व क्रांति' के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है "समस्त संसार में क्रांति उत्पन्न करके वह (लेनिन) सब देशों को स्वाधीन कर देना चाहता है"। आगे लेनिन के समाजवादी कार्यक्रम को स्पष्ट करते हुए यह लिखा "वह केवल श्रम-जीवियों के हाथों में ही शासन की बागडोर रखने के पक्ष में है।...जो परि-श्रम न करे, उसका शासन में कोई प्रतिनिधित्व न रहे। और ऐसा कोई मनुष्य न बचे, जो बिना परिश्रम की रोटी खा सके।'

रमाशंकर अवस्थी को हिंदी में लेनिन के प्रथम जीवनी-लेखक होने का गौरव देते हुए भी लेनिन के विचारों को हिंदी में अधिक प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करने का श्रेय विनायक सीताराम सर्वटे को दिया जायेगा। १९२१ में ही सर्वटे ने 'बोल्शेविज्म' नामक पुस्तक लिखी। यह पुस्तक इंदौर से प्रकाशित हुई। प्रकाशित किया 'हिंदी साहित्य मंदिर' के संचा-लक जीतमल लूणिया ने। उल्लेखनीय है कि इस पुस्तक की भूमिका लिखी प्रसिद्ध भारतीय दार्शनिक एवं राष्ट्रकर्मी डा० भगवानदास ने। सर्वटे की पुस्तक से ज्ञात होता है कि उन्होंने लेनिन की क्रांतिकारी पुस्तक 'राज्य और क्रांति' पढ़ी थी। सर्वटे ने अपनी पुस्तक में इसका जिक्र करते हुए लिखा है कि पुस्तक लिखने के दौरान ही बोल्शेविक क्रांति का श्रीगणेश हो गया और

पुस्तक लिखने की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य—शासन-कार्य—लेनिन पर आ पड़ा, जिससे यह पुस्तक अधूरी रह गयी। ३० नवंबर को लेनिन ने यह अंतिम वाक्य लिखा है "क्रांति पर पुस्तक लिखने की अपेक्षा क्रांति करना अधिक महत्त्वपूर्ण है।"

लेनिन के 'श्रमिकों की राज्य-सत्ता' के सिद्धांत पर लगाये जानेवाले आरोपों का खंडन करते हुए सर्वटे ने लिखा है "लेनिन के मत के अनुसार उसके इस व्यवहार में जरा भी असंगति नहीं है।...लेनिन कहता है कि सरकारी संस्था का जन्म तो इसीलिए होता है कि एक वर्ग की सत्ता दूसरे वर्ग पर चलती रहे और इसीके लिए उसकी स्थिति भी है। पूंजीशाही सरकार की सत्ता नष्ट करने के लिए श्रमजीवी सरकार की स्थापना करनी चाहिए। हां, यह सरकार उन्हीं श्रमजीवियों की संगठित हो सकती है जो अपने वर्ग के सच्चे अभिमानी होंगे। इस सरकार के संगठन में औरों को हक देना ऐसा ही है जैसा कि युद्ध के समय में अपनी छावनी में शत्रु के लोगों को टिकने के लिए स्थान देना। यह तो आत्मघात है।"

सर्वटे ने सोवियत देश के खिलाफ फैलाये जानेवाले अप-प्रचारों का खंडन करते हुए लिखा "रूस में और बातें चाहे जैसी हो रही हों, परंतु यह बात उनके शत्रुओं को भी खेदपूर्वक स्वीकार करनी पड़ती है कि आज वहां शांति और सुव्यवस्था का राज्य है और शासन-यंत्र नवीन उत्साह के साथ सुचारु रूप से काम कर रहा है। इससे यह स्पष्ट होता है कि बोल्शेविक सरकार को रूसी जनता की काफी सहानुभूति और सहायता होनी चाहिए और जनता में उनके विचारों का प्रसार खूब होना चाहिए।...बोल्शेविक सरकार का शासन-कार्य और उनके द्वारा घटित रूप की राजनैतिक, सामाजिक और सांपत्तिक क्रांति अत्यंत महत्वपूर्ण है। जग के भावी इतिहास का वह एक महत्वपूर्ण घटक—अवयव—है।"

भारत में बोल्शेविक क्रांति की संभावनाओं पर विचार करते हुए सर्वटे ने लिखा "अच्छा, यदि आज भारत की परिस्थिति बोल्शेविज्म के प्रसार योग्य नहीं है, तो क्या कुछ समय बाद पश्चिमी पूंजीशाही और उसके साथ ही वर्ग-कलह की वृद्धि होने पर, उसका फैलना अनिवार्य नहीं है? आजकल पहले से अधिक हड़तालें हो रही हैं। श्रमजीवियों के संघ स्थापित होते जा रहे हैं और श्रमजीवियों की कांग्रेस भी होने लगी है।

इन चिह्नों से क्या यह प्रकट नहीं होता कि यहां भी बोल्शेविज्म जल्द ही फैलेगा !"

अगले वर्षों में लेनिन और रूसी क्रांति के विषय में दो और महत्वपूर्ण हिंदी पुस्तकें प्रकाशित हुई। १६२२ में 'भारत मित्र' के सहकारी संपादक विश्वम्भरनाथ जिज्जा की पुस्तक 'रूस में युगांतर' तथा १६२३ में प्राणनाथ विद्यालंकार की पुस्तक 'रूस का पंचायती राज', दोनों कलकत्ता से प्रकाशित हुई थीं। जिज्जा की पुस्तक इसलिए उल्लेखनीय है कि उसमें पहली बार लेनिन का पूरा वास्तविक नाम—'व्लादिमीर-इलिच-यूलियानोव-निकोलाय-लेनिन' दिया गया है। प्राणनाथ विद्यालंकार की पुस्तक लेनिन के विचारों की गहरी समझ के लिए महत्वपूर्ण है। लेनिन ने क्रांतिकारी सफलता के लिए किसानों और मजदूरों की एकता पर बल दिया था। लेनिन के विचारों की इस बुनियाद को प्राणनाथ विद्यालंकार ने पूरी तरह समझा था और उसकी व्याख्या करते हुए लिखा "बोल्शेविक लोग ईमानदार थे। महात्मा लेनिन सचमुच महात्मा था। फरवरी तथा मार्च की राज्य-क्रांति के समय में ही उसने अपने विचार प्रकट कर दिए थे। उसने किसानों को कह दिया था कि तुम बिना किसी प्रकार की देरी के अपना पंचायती राज्य स्थापित कर लो।. लेनिन का विचार था कि गांवों में पंचायती राज्य तभी चल सकता है जब कि शहरों में भी पंचायती राज्य कायम हो जाये। क्योंकि शहरों में पहुंचकर पूंजीपति और ताल्लुकेदार लोग गांव के विरुद्ध तैयारियां करेंगे और किसानों का गला घोंटने का इरादा करेंगे।...शहरों में मेहनती मजदूर ही हैं जो कि किसानों का पूरे तौर पर साथ देंगे। यही सोच करके महात्मा लेनिन ने मेहनती मजदूरों को कहा कि जिन-जिन स्थानों में तुम काम कर रहे हो, उन-उन स्थानों पर कब्जा कर लो।...सारे रूस में शीघ्र ही पंचायती सभाओं का जाल बिछ गया। साम्यवाद की भूमिका बंध गयी। परन्तु जब तक सारे संसार के मेहनती मजदूरों तथा किसानों की सहायता न हो तब तक साम्यवाद का बरगद अपनी शाखाओं के नीचे पूंजीपतियों तथा ताल्लुकेदारों की अत्याचार से पूर्ण टायरन्शाही की कड़ी धूप से तपे हुए संसार के लोगों को पूरे तौर पर घनी छाया नहीं दे सकता है। ..समय आयेगा जब कि संसार भर के मेहनती मजदूर तथा किसान लोग गुलामी से छुटकारा पाकर हमारी

राज्य क्रांति को स्मरण करेंगे।"

इस प्रकार १९१९ से १९२३ तक लेनिन और रूसी राज्य क्रांति पर जो पुस्तकें हिंदी में निकलीं उनका इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि १९२४ में जब लेनिन की मृत्यु का समाचार मिला तो हिंदी की सभी पत्र-पत्रिकाओं ने लेनिन पर ऐसे शोकोद्गार व्यक्त किये जैसे वह अपने ही प्रिय नेता हों। लेनिन की मृत्यु पर शोकोद्गार व्यक्त करने में अग्रणी रहा प्रयाग से प्रकाशित होनेवाला कृष्णकांत मालवीय का पत्र 'अभ्युदय'। २९ जनवरी १९२४ को 'अभ्युदय' ने लिखा "संसार में इस समय का संसार का सबसे बड़ा मनुष्य उठ गया।...समता, स्वाधीनता के कोरे सिद्धांतों को इसने वास्तविक रूप का रूप दे दिया। इसने श्रमजीवी समाज और गरीबों का अधिकार कितना सुरक्षित हो सकता है, यह संसार को दिखला दिया।" 'इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी एंड रेकार्ड्स' के 'नोट्स आन द प्रेस' की ५, ६, ८ और १६ सप्ताहों के अनुसार बनारस के 'आज', कलकत्ता के 'वर्तमान', 'देशभक्त', 'उत्साह' तथा कानपुर के 'मजदूर' ने लेनिन पर श्रद्धांजलियां अर्पित कीं। 'आज' ने यह कामना की "ईश्वर उनके अनुयायियों को ताकत दे कि वे विश्व की मुक्ति के उनके लक्ष्य को पूरा कर सकें।" 'वर्तमान' ने मद्रास के किसान और मजदूर संघ के इस निश्चय की प्रशंसा की जिसके अंतर्गत दिवंगत बोल्शेविक नेता के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए 'लेनिन-सप्ताह' के आयोजन की बात कही गयी। 'मजदूर' ने एक कविता छापी जिसमें यह प्रार्थना की गयी है "लेनिन स्वर्ग से भारत में उतरकर गरीब किसानों की रक्षा करें तथा वर्तमान नौकरशाही शासन-प्रणाली को शांतिपूर्ण ढंग से, बिना खून बहाये अहिंसक क्रांति द्वारा समाप्त करें।"

इन दैनिक और साप्ताहिक पत्रों के अतिरिक्त हिंदी की मासिक साहित्यिक पत्रिकाओं ने भी लेनिन के देहावसान पर टिप्पणी और लेखों के द्वारा श्रद्धांजलि अर्पित की। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की 'प्रभा' ने १ फरवरी १९२४ को 'रूस के उस अवतार' को श्रद्धांजलि देते हुए लिखा [illegible] चला गया किंतु उसकी ध्वनि अनंत काल तक पुण्य प्रमाण वालों के [illegible] उतर विश्व में उलट-फेर करती रहेगी।" १२ फरवरी १९२४ को [illegible] 'महापुरुष और युगावतार' लेनिन के सादा जीवन और [illegible]

नवजादिकलाल श्रीवास्तव ने 'बोल्शेविकों की विजय-यात्रा' नामक पुस्तक लिखी जिसमें लेनिन की उपलब्धियों का आकलन इन शब्दों में किया गया है "सन् १९१८ से लेकर १९२४ तक परिश्रमपूर्वक नवीन राष्ट्र का निर्माण कर, मित्रों को आनंद और शत्रुओं को आदर प्रदान कर, मानव-महत्व का गगन-चुंबी विजय-स्तंभ इतिहास के वक्षस्थल पर स्थापित कर, रूस से दीनता और दरिद्रता का नामो-निशान मिटाकर, चिर-पददलित रूसी किसानों और मजदूरों को मुक्ति प्रदान कर तथा सुयोग्य साथियों के हाथों में राष्ट्र की बागडोर देकर मानव मित्र लेनिन ने सन् १९२४ में महाप्रस्थान किया।"

लेनिन संबंधी इस व्यापक चर्चा ने स्वयं लेनिन की रचनाओं के हिंदी अनुवाद की माग बढ़ा दी और १९२४ में ही बनारस से लेनिन की युगांतरकारी पुस्तक 'इंपीरियलिज्म' का हिंदी अनुवाद 'साम्राज्यवाद पूंजीवाद की सबसे ऊंची मंजिल' नाम से प्रकाशित हुआ, जो भारतीय भाषाओं में संभवत उस पुस्तक का पहला अनुवाद है। अनुवाद किया प० जीवनराम शास्त्री ने और भूमिका लिखी आचार्य नरेंद्रदेव ने। भूमिका में आचार्य नरेंद्रदेव ने लेनिन की मुख्य स्थापनाओं का सारांश उपस्थित करते हुए अंत में इस निष्कर्ष को रेखांकित किया "साम्राज्यवाद के युग में संसारव्यापी

स्वभावत साहित्य का इस वातावरण से सर्वथा अस्पृष्ट रहना असंभव था। १९३६ में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना आकस्मिक नहीं, बल्कि इन घटनाओं की सहज परिणति थी, जिसके संगठनकर्ता लेनिन के विचारों को माननेवाले नौजवान कम्युनिस्ट लेखक थे, किंतु जिसमें निराला और पंत जैसे हिंदी के प्रतिष्ठित कवियों ने सहर्ष भाग लिया और अखिल भारतीय ख्याति के कथाकार प्रेमचंद ने जिसके प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता की।

प्रेमचंद की रचनाओं में लेनिन के नाम का स्पष्ट उल्लेख तो नहीं मिलता, किंतु उनके पत्रों, लेखों और उपन्यासों में लेनिन के विचारों की छाया स्पष्ट देखी जा सकती है। १९१९ के दिनों में जब सारा हिंदी-जगत लेनिन और बोल्शेविक क्रांति से उत्तेजित था, प्रेमचंद भी मन-ही-मन अपनी आस्था निश्चित कर चुके थे। फरवरी १९१९ के 'जमाना' में उन्होंने 'दौरे कदीम, दौरे जदीद' शीर्षक लेख लिखा जिसके यह वाक्य ध्यान देने योग्य हैं : "आनेवाला जमाना अब किसानों और मजदूरों का है। दुनिया की रफ्तार इसका साफ सबूत दे रही है। हिंदुस्तान इस हवा से बेअसर नहीं रह सकता। हिमालय की चोटियां उसे इस हमले से नहीं बचा सकतीं।...जनता की ठहरी हुई हालत से धोखे में न आइये। इंकलाब से पहले कौन जानता था कि रूस की पीड़ित जनता में इतनी ताकत छिपी हुई है।" २१ दिसंबर १९१९ को उन्होंने अपने दोस्त 'जमाना' संपादक मुंशी दयानारायन निगम को पत्र में लिखा "मैं अब करीब-करीब बोल्शेविस्ट उसूलों का कायल हो गया हूं।" उसी साल उन्होंने 'प्रेमाश्रम' नामक उपन्यास लिखा जिसमें एक जगह किसान बलराज कहता है कि उसके पास चिट्ठियों में रूस की खबर आती है जिससे मालूम होता है "रूस में काश्तकारों का ही राज है, वह जो चाहते हैं करते हैं।" ये चिट्ठियां बलराज को इस हद तक उत्तेजित कर देती हैं कि वह अपनी जमीन के लिए जमींदार का खून कर देता है। लेनिन का कहीं स्पष्ट उल्लेख किए बिना भी प्रेमचंद ने भीतर-ही-भीतर लेनिन की यह सीख गांठ बांध ली थी कि किसानों के जागरण से ही भारत में क्रांति संभव है। 'सेवासदन' से 'प्रेमाश्रम' की ओर संक्रमण आकस्मिक और अकारण नहीं है। एक सच्चे रचनाकार के अनुरूप उन्होंने लेनिन का गुण-गान करने के बजाय उनके विचारों को

अपनी रचना में उतारना बेहतर समझा, और जीवन के अंतिम दिनों में लेनिन का नाम लिया भी तो इकबाल की कविता के जरिये, जैसे इसीका इंतजार हो। फरवरी १९३६ में पूर्णिया की एक सभा से लौटने के बाद प्रेमचंद ने लिखा "अब हमें ऐसे कवि चाहिएं जो हजरत इकबाल की तरह हमारी मरी हुई हड्डियों में जान डालें।" देखिए, इस कवि ने लेनिन को खुदा के सामने ले जाकर क्या फरियाद करायी है और उसका खुदा पर इतना असर होता है कि वह अपने फरिश्तों को हुक्म देता है :

> उट्ठो मेरी दुनिया के गरीबों को जगा दो
> काखे उमारा के दरो-दीवार हिला दो।
> सुल्तानिए जमहूर का आता है जमाना
> जो नक्शे कोहन तुमको नजर आए मिटा दो।
> जिस खेत से देहकां को मयस्सर न हो रोटी
> उस खेत के हर खोशए गंदुम को जला दो।

और हिंदी में ऐसे कवियों की कमी न थी। कम-से-कम एक कवि निराला ऐसे अवश्य थे। निराला ने भी प्रेमचंद की तरह 'लेनिन' पर स्पष्टत: कहीं कुछ नहीं लिखा, पर उनकी विद्रोही प्रतिभा में कहीं-न-कहीं लेनिन का प्रभाव बीज रूप में सुरक्षित अवश्य था। निराला के जीवनी-लेखक डा० रामविलास शर्मा ने 'निराला की साहित्य-साधना' में लिखा है कि 'मतवाला' साम्यवाद का भी प्रचार कर रहा था। उसने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के संगठन, रूसी राज्य-क्रांति, और नयी सोवियत-व्यवस्था के पक्ष में अनेक लेख छापे। "कलकत्ते में रहते उनका (निराला का) परिचय कुछ प्रमुख साम्यवादी नेताओं से हुआ। इनमें भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के संस्थापक मुजफ्फर अहमद भी थे। मुजफ्फर अहमद से उनका परिचय कराया राधामोहन गोकुलजी ने।" यदि यह कथन सच है तो यह असंभव है कि इस परिचय और 'मतवाला' मंडल के बीच लेनिन का जिक्र न आया हो। उल्लेखनीय है कि हिंदी की लेनिन-संबंधी अधिकांश प्रारंभिक पुस्तकें कलकत्ता से ही निकली थीं और निराला उन दिनों कलकत्ता-वासी ही थे। उन्हीं दिनों १९२० में निराला ने 'बादल राग' शीर्षक कविता-माला की वह बड़ी लिखी थी जिसकी प्रसिद्ध पंक्ति है :

तुझे बुलाता कृषक अधीर
ऐ विप्लव के वीर !

उस समय बोल्शेविक क्रांति के अलावा और कौन 'विप्लव' था तथा लेनिन के अतिरिक्त विप्लव का वीर और कौन था जिसकी छाया इस कविता में देखी जाये ?

निराला के सहकर्मी सुमित्रानंदन पंत उस दौर के दूसरे रोमांटिक हिंदी कवि हैं जिनकी कविता में अक्तूबर-क्रांति की गूंज शुरू में तो नहीं किंतु १९३४ के आस-पास 'युगांत' और 'युगवाणी' की कुछ कविताओं में सुनायी पड़ती है। पंत ने भी उस समय लेनिन पर कोई कविता नहीं लिखी —कविता लिखी तो मार्क्स के प्रति और फिर 'साम्यवाद' तथा 'श्रमिक' पर। हिंदी कविता में श्रमिक के गौरव को प्रतिष्ठित करनेवाले पंत संभवतः पहले कवि हैं, जिसे चाहे मार्क्सवाद का प्रभाव कहें चाहे लेनिन का या फिर सोवियत व्यवस्था का, विशेष फर्क नहीं पड़ता। इस प्रसंग में हिंदी रोमांटिक आंदोलन के अन्यतम काव्य 'कामायनी' (१९३७) के 'संघर्ष' सर्ग का उल्लेख अप्रासंगिक न होगा जिसमें उस युग के इतिहास-विधायक समीक्षक रामचंद्र शुक्ल को 'वर्गहीन समाज की साम्यवादी पुकार की भी दबी-सी गूंज' सुनायी पड़ी थी। इस प्रकार निराला और पंत के साथ प्रसाद भी मिलकर त्रयी की पूर्ति करते हैं।

कविता के अंतर्गत यथार्थ को छाया में बदलने के अलावा इन छाया-वादी कवियों की अपेक्षा लेनिन की स्पष्ट छाप स्वभावतः उस युग के उन कवियों में मिलती है जो युगचारण की भूमिका निभाने में कुशल हैं। दिनकर की १९३१ में लिखित 'कस्मै देवाय' शीर्षक कविता में लेनिन का उल्लेख स्पष्ट है :

उठ भूषण की भावरंगिनी
लेनिन के दिल की चिनगारी
युगमर्दित यौवन की ज्वाला
जाग, जाग री, क्रांति कुमारी।

दिनकर उस दौर में अगाध रूप से वर्तमान के साथ [illegible] से —भले ही भावावेश में वह क्रांति 'विपथगा' (१९३८) ही क्यों न हो जाये। यही नहीं उनके प्रसिद्ध काव्य 'कुरुक्षेत्र' (१९४६) में भी [illegible]

बनाम अहिंसा की जो नयी बहस है उसमें स्पष्ट मति के अनुसार लेनिन बनाम गांधी का ही अंतर्द्वंद्व है।

इसके बाद शिवमंगलसिंह 'सुमन', नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शंकर शैलेंद्र आदि नौजवान प्रगतिशील कवियों की विशाल परंपरा है जो प्रगतिशील लेखक संघ के साथ साहित्य में आयी और इसीके साथ यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, भगवतशरण उपाध्याय, अमृतराय जैसे समर्थ गद्य-लेखकों की पौध भी उल्लेखनीय है, जो मौलिक रूप से लेनिन के संदेश की संवाहक रही है। साहित्य की यह धारा इतनी व्यापक और विशाल है कि संक्षेप में न तो इसका विवरण ही संभव है और न मूल्यांकन ही। प्रसंगवश इतना ही कहा जा सकता है कि इन प्रगतिशील लेखकों के आरंभिक कृतित्व में बहुत कुछ ऐसा था जिसे गोर्की की भाषा में 'क्रान्तिकारी रोमांटिसिज्म' या 'जीवन-व्यंजक रोमांटिसिज्म' की संज्ञा दी जा सकती है। अधिकांश रचनाओं में लेनिन के उस पक्ष की अभिव्यक्ति हुई है जिसका संबंध स्वप्न देखने की क्षमता से है। लेनिन का दूसरा पक्ष जो सत्य को ठोस (कांक्रीट) मानता है, जो यथार्थ के प्रति निर्मम और आलोचनात्मक दृष्टि का आग्रही है और जो वास्तविकता को सर्वत्र समझना में देखने पर बल देता है, इन रचनाओं में प्रायः उपेक्षित ही रहा। इसीलिए इन रचनाओं में अंधेरी रात से ज्यादा लंबी लाल सुबह होती थी और वह सुबह भी बहुत जल्दी आ जाती थी—गीत की टेक की तरह अंत में अदबदाकर आती थी।

इस प्रकार इस विचार के साथ हम स्वभावतः आलोचना के उस खतरनाक क्षेत्र में प्रवेश करते हैं जहां लेनिन के नाम पर काफी खून-खराबा हुआ। आलोचना में लेनिन का प्रभाव रचना की अपेक्षा काफी देर से चौथे दशक के अंत और पांचवें दशक के आरंभ में परिलक्षित हुआ। वैसे हिंदी-आलोचना काफी पहले से समाजोन्मुख थी और रामचंद्र शुक्ल जैसे आलोचक दूसरे दशक के आरंभ से ही साहित्य में लोक-मंगल के आदर्श पर बल देते आ रहे थे; इसलिए लेनिन के प्रभाव में यदि हिंदी-आलोचना केवल अपनी समाजोन्मुख परंपरा को ही सही द्वंद्वात्मक पद्धति पर विकसित करती तो भी कम न था। किंतु खेद है कि आरंभ में हिंदी-आलोचकों की 'साहित्य और कला' पर लेनिन के जो कुछ भी विचार थे वे

अपनी समझ ना में सुलभ न हो सके। अलबत्ता सुलभ था तो लेनिन का एक निबंध 'पार्टी-साहित्य और पार्टी-संगठन' जिसमें पार्टी-लेखकों से पूरी पक्षधरता का आग्रह किया गया था। लेनिन के अनुयायी आलोचकों ने इस निबंध को दिशा-निर्देशक मानकर इसे केवल पार्टी-लेखकों के स्थान पर समस्त लेखकों—जिनमें अधिकांशतः गैर पार्टी प्रगतिशील लेखक थे—पर कड़ाई से लागू करना शुरू किया। परिणामतः अधिकांश लेखक प्रति-क्रियावादी प्रमाणित हुए। रचना विचार का पर्याय मान ली गयी और आलो-चकों की इस मांग की पूर्ति में धीरे-धीरे पार्टी के राजनीतिक दस्तावेजों का पद्यानुवाद शुरू हुआ। विषय के रूप में सिर्फ किसान और मजदूर रह गये और विषय-वस्तु के रूप में आर्थिक शोषण। रूप उद्बोधन मात्र और भाषा के नाम पर केवल भाषण।

वैसे कुछ दिनों बाद लेनिन के तात्स्ताय संबंधी लेख भी हिंदी-जगत में सुलभ हो गये, जिनमें लेनिन ने अपनी तीक्ष्ण द्वंद्वात्मक दृष्टि से तात्स्ताय के विचारों और कलात्मक प्रतिभा के बीच अंतर्विरोध को लक्षित करते हुए उस महान कलाकार का महत्त्व आंका था, किंतु लेनिन की इन व्यावहारिक समीक्षाओं से हिंदी-आलोचना ने विशेष लाभ नहीं उठाया। इन समीक्षात्मक निबंधों के कारण एक हद तक तुलसीदास, भारतेंदु तथा प्रेमचंद जैसे प्राचीन महान लेखकों के मूल्यांकन में तो लचीलापन आया किंतु समकालीन लेखकों का मूल्यांकन करते समय प्रायः वह दृष्टि बदल जाती थी। हिंदी-आलोचना में लेनिनवादी दृष्टि के ऐसे प्रभावों को आज कोई भी पाठक आसानी से देख सकता है। इस संदर्भ में रामविलास शर्मा, प्रकाशचंद गुप्त और शिवदानसिंह चौहान जैसे यशस्वी प्रगतिशील समालोचकों का उल्लेख पर्याप्त है।

भारतीय साहित्य पर लेनिन के विचारों के प्रभाव का इतिहास अधूरा और एकांगी होगा, यदि यह न कहा गया कि एक दौर ऐसा भी रहा है जब यह प्रभाव अत्यंत क्षीण बल्कि शून्य-सा रहा है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद का पूरा छठा दशक कम-से-कम हिंदी में लेनिन के प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव का कोई उल्लेखनीय संकेत नहीं देता। इसके लिए किस हद तक देश की राजनीतिक स्थिति जिम्मेदार है और किस हद तक लेनिन के अनुयायी राजनीतिक नेता और आलोचक, इसकी गहरी छानबीन जरूरी

है। इतना निश्चित है कि १९४८-४९ में भारत की कम्युनिस्ट पार्टी तथा उसका अनुसरण करनेवाले प्रगतिशील लेखक संघ के नेताओं ने जो कट्टरपंथी क्रान्तिकारी नीति अपनायी थी उसका घातक प्रभाव कुछ दिनों बाद के भूल-सुधार के बावजूद देर तक बना रहा। निस्संदेह-युद्धोत्तरकाल के शीत युद्ध की कम्युनिज्म-विरोधी अमरीकी विचार-धारा इस स्थिति का लाभ उठाकर भारतीय साहित्य को गुमराह करने में कामयाब हुई। ऐसी स्थिति में लेनिन का जो प्रभाव हिंदी में ठीक अक्तूबर-क्रांति के बाद दिखायी पड़ा था, वह आगे विकसित न हो सका तो कोई आश्चर्य नहीं। यह भी एक विडंबना ही है कि हमारी स्वाधीनता की लड़ाई के आरंभिक उत्थान में जिस लेनिन का नाम राष्ट्रीय मुक्ति और समाजवादी स्वप्न का पर्याय था वह स्वाधीनता-प्राप्ति के साथ ही विस्मृत हो गया। और व्यंग्य यह कि यह सब सोवियत देश के साथ भारत की बढ़ती हुई मैत्री के बावजूद हो रहा है। भय है कि लेनिन का यह जन्मशती समारोह भी कहीं इस उदासीनता को और गहरा न कर दे, क्योंकि हर शती समारोह उस महापुरुष को सौ साल के लिए न सही, कुछ दशकों के लिए तो मार ही देता है। रवींद्रनाथ, गालिब और गांधी की दुर्गति के बाद लेनिन के बारे में भी इस आशंका का उदय सर्वथा निराधार नहीं है। फिलहाल आशा का एक हल्का-सा आधार है तो आज के संसार के साथ भारत में भी उभरती हुई नयी क्रांतिकारी चेतना, जो प्रेरणा के लिए फिर लेनिन की ओर मुड़ चली है। इस क्रान्तिकारी चेतना के प्रखर स्वर साहित्य में भी सुनायी पड़ने लगे हैं। कामना यही करनी चाहिए कि यह स्वर लेनिन से केवल क्रांतिकारी जोश ही न लेगा, बल्कि वह परिपक्व वैज्ञानिक दृष्टि भी ग्रहण करेगा जो परिस्थितियों को उनकी ठोस द्वंद्वात्मकता में देखकर रचनात्मक स्तर पर रूपांतरण की क्षमता प्रदान करती है।

लेनिन का भारतीय साहित्य पर प्रभाव

नंद चतुर्वेदी

लेनिन की मृत्यु पर कवि मायकोवस्की ने 'लेनिन की मृत्यु' शीर्षक से जो लम्बी कविता लिखी थी उसकी कुछ पंक्तियां उल्लेख्य हैं

> आज शाम
> कामगर पत्थर जनों की तरह गंभीर हो गए थे
> और पत्थर जन
> बालकों की तरह सुबक सुबक कर रोने लगे

वस्तुतः मनुष्य इतिहास की विकृतियों को मिटाने के लिए आयुभर अन-वरत संघर्ष करनेवाले लेनिन की मृत्यु पर मायकोवस्की को बात के सारे संदर्भ उथल-पुथल हुए से लगे हों तो आश्चर्य नहीं है। लेनिन अपने समय के मनुष्य की इच्छा और नियति को समझने और उसे मूर्तरूप देने-वाले दृष्टिवान पुरुष थे। उन्होंने एक क्रूर गठित और हिसाब-किताब की दुनिया को फिर से नैतिकता, बराबरी और मानवीय आदर्शों पर स्थापित करने का कठिन काम किया।

यों हिंदुस्तान ही में नहीं दुनिया में जहां भी मनुष्य जन्मा वहां यह प्रयत्न होता रहा कि आदमी भौतिक यातना, भूख, गरीबी, गैर बराबरी के कारण पैदा होनेवाले उत्पीड़न से मुक्त हो, लेकिन इन उत्तम विचारों से प्रेरित होने के उपरान्त भी वह दुनिया को तब्दील करनेवाले दर्शन, आदर्श, कार्य योजना और विधि का निर्धारण नहीं कर सका और इसलिए वैयक्तिक छटपटाहट के उपरान्त भी वह व्यापक स्तर पर मनुष्य की आर्थिक लाचारी, आत्मा का विघटन, अनिच्छित और अनैतिक विकल्पों का चुनाव देखता रहा। वह इन परिस्थितियों में संसार को सुंदर बनाने

के लिए 'नैतिक आदर्शों तथा सामंजस्य की भावना'[1] पर जोर देता रहा। एंगिल्स ने इन्हीं उतोपीय (utopians) चिंतकों के संबंध में लिखा था "यह आम तौर पर स्वीकार किया जाता है कि उतोपीय समाजवादी दुर्लभ प्रतिभा, असाधारण सूझबूझ और ऊंचे दर्जे की दृष्टि रखनेवाले व्यक्ति थे। उनके दिमाग में समस्याओं तथा समाधानों की अस्पष्ट झलक थी, किंतु उनके यह सब कार्य अनुमान के आधार पर थे। वे जिन निष्कर्षों पर पहुंचे वे तर्क से व्युत्पन्न निष्कर्ष नहीं थे[2]।"

मनुष्य के शोषण, दासत्व और भाग्य निर्माण में मनुष्य की शैतानी भरी साझेदारी को व्याख्यायित और उद्घाटित करनेवाले कार्ल मार्क्स थे। उन्होंने इस विचार को तर्क-संगति दी जिसकी स्थापना के साथ ही 'मनुष्य के भाग्य निर्माण में ईश्वर की इच्छा' का तर्क विलुप्त हो गया। मार्क्स ने नैतिक इच्छा और सामंजस्य की भावना जैसे धुंधले और रहस्य शब्दों के स्थान पर एक निश्चित अर्थ देनेवाले वैज्ञानिक चिंतन को प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा, "सारा मनुष्य इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है। मनुष्य ने अपनी यात्रा की चार महत्वपूर्ण स्थितियां पार की हैं—साम्यवादी, दास और स्वामी भाववाली, सामंती तथा पूंजीवादी, लेकिन प्रत्येक स्थिति में वह वर्ग संघर्ष के सिलसिले से गुजरा है। हर बार वर्ग संघर्ष होता है और हर बार उत्पादन के साधनों पर कब्जा किये हुए मुट्ठीभर व्यक्ति हार जाते हैं। सामंत काल में यही हुआ। भू-स्वामियों के वर्ग का ह्रास इसलिए हो गया, क्योंकि एक सीमा पर जाकर उत्पादन रुक गया और असंतुष्ट वंचित वर्ग ने भू-स्वामियों की क्रूरता से मुक्ति हासिल कर ली। मार्क्स का कथन था कि पूंजीवाद की अंतिम नियति यही है। पूंजीवाद से ही पूंजीवाद के ह्रास की शक्तियां उत्पन्न होंगी, पूरा ढांचा ही टूट जायेगा। तब संपत्ति की मिल्कियत के रिश्ते बदल जायेंगे, नये रिश्ते बनेंगे और पैदावार की शक्तियों का विकास आसान हो जायेगा। "यहीं से मनुष्य जाति एक ऐसे चरण में प्रवेश करती है जहां मनुष्य द्वारा

---

[1]अशोक मेहता : लोकतांत्रिक समाजवाद (प्र० भा० सर्व सेवा-संघ प्रकाशन, काशी, '५६) पृ० २१

[2]वही, पृ० २२

मार्क्स के [illegible] और मनुष्य को आर्थिक दासता से मुक्त करने-वाले चिन्तन को व्यावहारिक रूप देने का काम लेनिन ने किया। उनका नाम हिन्दुस्तान के लोगों को इसलिए भी प्रिय लगता रहा कि उन्होंने अपनी क्रांति की धुरी रूस जैसे पिछड़े मुल्क को बनाया जिसकी प्रकृति हमारी प्रकृति से बहुत मिलती-जुलती थी। लेनिन का चरित्र और व्यक्तित्व हिन्दुस्तान के क्रांतिधर्मी समाजवादी और नेतृत्व के लिए सदा आकर्षक रहा, क्योंकि स्वतन्त्रता, समता और उदार चिन्तन के लिए संघर्ष करनेवाली नयी शक्तियों के प्रतीक थे। लेनिन के साथ हमारी आसक्ति का एक महत्वपूर्ण कारण औपनिवेशिक जनता के साथ उनकी हमदर्दी और प्रबुद्ध नैतिक समर्थन था। लेनिन जानते थे कि योरप के इस या उस देश में क्रांति होना पर्याप्त नहीं है इसलिए वे एशिया महाद्वीप में साम्राज्य-वादी शक्तियों से संघर्ष करनेवाली जनता के साथ जुड़े रहे।

---

[1]राममनोहर लोहिया : मार्क्सवाद और समाजवाद ('जन'-जून ७०) पृ० ११

[2]आचार्य नरेंद्रदेव : राष्ट्रीयता और समाजवाद : समाजवादी दल, पृ० ३०१

[3]अशोक मेहता : वही, पृ० २१

भारत की संघर्षरत जनता के प्रति उनकी प्रगाढ़ सहानुभूति का एक उदाहरण यह है कि १९०८ में उन्होंने 'विश्व राजनीति की ज्वलनशील सामग्री' शीर्षक देकर जो लेख लिखा है उसमें उन्होंने निर्भीकतापूर्वक पूंजीवादी उदारतावाद के उस पैशाचिक पाखंड की निंदा की जो भारत की राष्ट्रीय भावना का निर्दयतापूर्वक दमन करते समय कभी भी आंख नहीं शरमाता। इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है 'उदारपंथी और परिवर्तनवादी बदमाश' जान मार्ले के शासन द्वारा महान भारतीय नेताओं को दी गई दीर्घ कारा की सजा।[1] इसी अवसर पर बम्बई में इस बर्बर दंड के प्रति अपनी नाराजगी प्रकट करने के लिए छः दिन की हड़ताल आयोजित की गई जिसका अभिनंदन करते हुए लेनिन ने लिखा था, "यूरोप के वर्ग चेतन मजदूर को एशिया में साथी मिल चुके हैं और ज्यों-ज्यों दिन बीतते जायेंगे उनकी संख्या बढ़ती जायेगी[2]।" एक दूसरा निबंध भी जिसका शीर्षक 'बाल्कन की घटनाएं' था, इस तथ्य की साक्षी में दिया जा सकता है कि भारतीय जनता के उग्र होते हुए संघर्ष में लेनिन की रुचि गहरी होती जा रही थी। इस लेख में उन्होंने लिखा था, "एक ओर सम्मानित राजनीतिज्ञ ब्रिटेन के पास 'सुधारों' की छोटी-छोटी सुरक्षा के लिए अर्जियां भेजकर संतोष की सांस ले रहे हैं तो दूसरी ओर महाराष्ट्र, बंगाल और पंजाब के क्रांतिकारी आतंकवादियों ने देश को आंदोलित करना और देश की दबी सहमी आबादी में आत्मसम्मान को जगाना शुरू कर दिया है[3]।" लेनिन वस्तुतः आयुभर एशिया और भारत की दबी कुचली जनता के मुक्तिकामी संघर्ष में रुचि लेते रहे जिसका परिणाम यह हुआ कि उनके साथ हम गहरी मित्रता का अनुभव करने लगे—करीब-करीब एक घनिष्ठता का अनुभव। यह इस रागात्मक घनिष्ठता की ही परिणति थी कि हिंदुस्तान

---

[1]हीरेन मुखर्जी : लेनिन और भारतीय स्वतंत्रता, राष्ट्रवासी साप्ताहिक, पृ० १५

[2]वही, पृ० १५

[3]के० दामोदरन के ग्रंथ 'भारतीय चिंतन परंपरा में द्रष्टव्य इकतालीसवां अध्याय मार्क्सवाद का प्रभाव' : जवाहरलाल नेहरू तथा डा राधाकृष्णन के मत भी इसी संदर्भ में पढ़े जा सकते हैं।

[illegible] स्थितियों को बदलकर इच्छानुकूल प्रकृति को दशा देने का कौतुक ने कुछ इस कारण भी कि उस समय किसी का किसी भी तरह की राजनीतिक बहस अर्थहीन और अनावश्यक प्रतीत हुई। वह बहस बार-बार से शुरू हुई लोकतंत्र और मार्क्सवाद की, हिंसा और अहिंसा की, आर्थिक और राजनैतिक, स्वातन्त्र्य के बीच वैकल्पिक चुनाव और उसके द्वंद्व की जहां शब्द निरर्थक हो जाता है और जहां सब तरह के शब्द सबके गले में पालतू कुत्तों की तरह पट्टी बांध देते हैं

बुराई का अंत करने के लिए तुम
कौनसी बुराई न करोगे ?
क्या तुम संसार को ऐसे संसार मे
बदल सकते हो
जो तुम्हारे लिए बहुत अच्छा हो ?
तुम क्या हो ?
जमीन मे धंस जाओ
कसाई का आलिंगन करो लेकिन
ससार को बदलो
इसके लिए यही चाहिए (बरटोल्ड ब्रेख्ट)

वरण स्वातन्त्र्य की ओर, अब तक रुकी हुई सभ्यता की जहा बहुत से खूब-सूरत शब्दों का मुलम्मा उतर गया है।

मार्क्सवाद—लेनिनवाद ने जिस वैज्ञानिक चिंतन को जन्म दिया उससे साहित्य और संस्कृति के क्षेत्रों में काम करनेवालों के मन नयी उमंग से भर गये। यों भी एक सामंजस्यहीन और अनेक सामाजिक यंत्रणाओं से आक्रांत सृष्टि को सामंजस्य देना और उसे क्षुद्र और विनाशित करनेवाली परंपराओं से बचाना संवेदनशील मनुष्य की पुरानी कामना है और अब उसके पास वह दृष्टि है जो अब तक के सारे रहस्य और अंधेरे के पार झांकती है तब उसे अनाकृति को आकृति देना और पृथ्वी मनोनुकूल, सुखद और यातनाओं से मुक्त करने के दायित्व से बढ़कर दूसरा कौन-सा दायित्व उसे आकर्षित करता। मनुष्य की निराशा, उसके विखंडन और उसकी जड़ता को बनाये रखना यह एक व्यापक षड्यंत्र है जिसे अवकाश-भोगी अभिजात्य रच रहा है तब उसे यह आवश्यक प्रतीत होने लगा कि वह ऐसे काव्य, उपन्यास, नाटक, संगीत, चित्र रचना करे जो मनुष्य का मोह भंग कर सके और निहित स्वार्थवाले अभिजात्य की क्रूरता और, षड्यंत्र तथा टुच्चेपन को उद्घाटित कर दे। यह विचार धीरे-धीरे आस्था का रूप लेने लगा कि उत्पादन के साधनों का स्वामित्व बदल दिया जाये यानी मुट्ठी-भर श्रेष्ठिजनों के स्वामित्व के स्थान पर सर्वहारा वर्ग का स्वामित्व स्थापित हो जाये तो एक नयी जन संस्कृति की और जन-साहित्य की पुनर्रचना संभव है। उटोपियायी समाजवादी चिंतकों ने ही नहीं बल्कि वैज्ञानिक समाजवादी चिंतकों ने भी मनुष्य के सुख और संपूर्ण विकास के जो स्वप्न मन में धारण किये वे लुभावने हैं। एक बार मार्क्स ने कहा था कि उनकी खाल इतनी मोटी नहीं है कि मनुष्य के कष्टों की ओर अपनी पीठ फेर दें। रोजा लग्जेंबर्ग ने एक पत्र में लिखा था, "समाजवाद रोटी का सवाल नहीं है एक सांस्कृतिक आंदोलन है जो संसार में एक महती विचारधारा को प्रवाहित करता है। इस सांस्कृतिक आंदोलन का केंद्र मानव है। मानव सर्वोपरि है। जो सिद्धांत, वाद या विचार चाहे वह कोई धर्म हो या दर्शन या अर्थशास्त्र मानव के उत्कर्ष को घटाता है वह मार्क्स को मान्य नहीं[1]।" मनुष्य की गरिमा और स्वतंत्रता कहीं खतरे में न पड़ जाये और समाजवादी आंदोलन महज सत्ताधीशों की क्रूरता में न

[1]आचार्य नरेंद्रदेव : राष्ट्रीयता और समाजवाद, समाजवाद का मूलाधार—मानवता, पृ० ४४६ : लोकतांत्रिक समाजवाद से।

बदल जाते उनकी जबरदस्त चिंता का स्वर एक कलात्मक संदर्भ में दोस्तो-एव्स्की अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'ब्रदर्स करमाज़ोव' में उठाते हैं। न्यायालय के समक्ष ईसा को लाया जाता है जिस पर चर्च की सत्ता उलटने और मानव के उत्तरदायित्व पर बहुत जोर देने का आरोप है। इसी प्रसंग में वृद्ध न्यायाधीश कहते हैं, "तुम चाहते हो जनता स्वतंत्र हो। लेकिन क्या तुम जानते हो कि स्वतंत्रता ऐसा बोझ है जिसे जनता वहन नहीं कर सकती? जनता का यह बोझ हमें ढोना है। हम जनता का भार ले चलने के लिए प्रयत्नशील हैं, क्योंकि स्वतंत्रता जनता के लिए अभिशाप है।" लेकिन दोस्तोव्स्की के लिए समाजवाद का कार्य जनता को स्वतंत्रता के भार से मुक्त करना नहीं बल्कि उसे उठाने की हिम्मत है। इसी प्रभावशाली संदर्भ में मार्क्स को एक स्थल पर आचार्य नरेंद्रदेव ने उद्धृत करते हुए लिखा है कि मजदूर को रोजमर्रा के भोजन की अपेक्षा शौर्य, आत्मविश्वास, स्वाभिमान और स्वातंत्र्य की कहीं अधिक जरूरत है।

मानव के भाग्यमुक्त होने की जबरदस्त संभावना ने विश्वभर के साहित्यकारों को मार्क्स—लेनिन का मित्र बना दिया। अनेक कृतिकार जो शायद द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, इतिहास की नयी व्याख्या और आर्थिक प्रगति को निश्चित करनेवाले गति सिद्धांतों को समझने का कष्ट न उठाना चाह रहे हों वे भी इस धारणा पर मुग्ध हो गये कि यंत्रणादायक सामाजिक व्यवस्था से मुक्ति अपरिहार्य है। शताब्दियों से अपने भाग्य का वजन दारिद्र्य की यातना और 'महाजनी सभ्यता' के कारण छिन्न-विच्छिन्न आत्मा का कष्ट उठानेवालों के लिए 'अभिजात्य के भार से मुक्ति' की कल्पना सर्वथा नयी और स्फूर्ति देनेवाली थी। रचनाकर्मी के लिए मनुष्य के पुनः प्रतिष्ठित होने और एक निर्बाध स्वातंत्र्य के जन्म लेने का गुण कुछ विलक्षण था। उस संभाव्य को यदि वे अवतरित कर सकते हैं तो क्यों न करें? इसी संभाव्य की भविष्यवाणी ने विश्व के हजारों-हजार लेखकों, कवियों, संगीतज्ञों, चित्रकारों और शिल्पियों पर जादू कर दिया। यह अवश्य हुआ कि यह जादू लोगों पर अपनी-अपनी तरह चला और 'मुक्ति के काल्पनिक स्वर्ग' की रचना कई तरह हुई। एक अंधेरे भविष्य और मरियल संस्कृति के साक्षात्कार से नये युग की संभावना कहीं अधिक स्फूर्तिदायक थी। कम-से-कम यह आत्महत्या और असीम भी सही से

जाती थी। इस उत्साहपूर्ण मनःस्थिति का वर्णन करते हुए एक योरोपीय चिंतक ने लिखा था कि उन्हें (कतिपय योरप के प्रबुद्ध) ऐसा नजर आने लगा मानो स्वर्ग का राज्य पृथ्वी पर आ जायेगा और जिसे जल्दी-से-जल्दी पृथ्वी पर उतारने के लिए वे दृढ़ता और विनय के साथ लग गए।[1]

योरप के स्वतन्त्रताप्रेमियों से कहीं अधिक उत्साहित हिंदुस्तान का रचनाधर्मी था, क्योंकि यहां क्रांति का अभिप्राय एक अर्थ-व्यवस्था के स्थान पर दूसरी अर्थ-व्यवस्था का स्थानान्तरण नहीं था बल्कि एक पूरे देश का पुनर्जन्म था जो जातियों के दर्प, दुराग्रहग्रस्त सामंती सरकार और अंग्रेज सरमायेदारों के जघन्य स्वार्थों से करीब-करीब टूट गया था। अक्तूबर क्रांति हमें इस संदर्भ में बड़ी मोहक लगी और रूस अतृप्त कामनाओं का स्वर्ग नजर आने लगा। उस समय शायद ही कोई कृतिकार हो जो क्रांति के इस सम्मोहन से अप्रभावित रह गया हो।

हिंदुस्तान में लेनिन—विशेषतया स्तालिन की तुलना में—अपनी प्रबुद्धता अध्ययनशीलता और उदारता के कारण आज तक प्रशंसित है। भारतीय लेखकों को यह उदार मनस्वी साहित्यानुरागी की तरह पसंद आते रहे। कुछ मतभेद के बावजूद भी ये ताल्स्ताय की कृतियों का कलात्मक मूल्य समझते थे। 'आलोचना' के १९६६ जुलाई-सितंबर के अंक में स्तेफान मोराव्स्की ने 'लेनिन एक साहित्यिक सिद्धांतकार के रूप में' चर्चित किया है और उसी में उन्होंने लेनिन की साहित्यिक रुचियों का विस्तार से जिक्र किया है। लूनाचार्स्की के संस्मरणों में दर्ज एक घटना का उल्लेख इस प्रसंग में द्रष्टव्य है, "सन् १९०५ में एक रात एक सहयोगी के घर लेनिन

---

[1] रिचर्ड क्रासमेन—(संपादक), द गाड देट फेल्ड, बेंटम बुक्स (न्यूयार्क) १९५१ पृष्ठ ३

द्रष्टव्य : In this book, *The God that Failed*, six intellectuals describe the journey into communism and the return. They saw it at first from a long way off—just as their predecessors 130 years ago saw the French Revolution—as a vision of the Kingdom of God on earth and like Wordsworth and Shelley they dedicated their talents to working humbly for its coming.

निःसंदेह लगते हैं लेकिन वह यह भी नहीं चाहते कि लेखक अपने के निजी प्रामाणिक दृष्टिकोण को छोड़ दें जो पार्टी के लिए अमूल्य उप-हार हैं'। इसी निजी और प्रामाणिक दृष्टिकोण के अभाव में लेनिन ने देमि-यन की कविताओं को अस्वीकार करते हुए कहा "वह भोंडा है वह पाठक का अनुसरण करता है जबकि जरूरत इसकी है कि हमेशा ही कुछ आगे रहा जाये।"...लेनिन कलात्मक वैयक्तिकता के पक्षधर थे। इस विषय के अंत में गोपाल बोरालजी ने कहा है, "लेनिन ने जो कुछ कहा है उसमें कृतिकार हमेशा ही सामाजिक राजनीतिक पार्टी के मसलों के संदर्भ में सामने आते हैं और साथ ही वह उन्हें सापेक्षिक स्वायत्तता भी प्रदान करते हैं।"

वस्तुतः कला और साहित्य के संदर्भ में यह दृष्टिकोण हिंदुस्तानी लेखकों की प्रकृति के अत्यधिक अनुकूल था। इस तरह भारतीय साहित्य-शास्त्र में आदर्शवाद और नैतिकता की परम्परा भी सुरक्षित रह गयी और साहित्यकार के वैयक्तिक वैशिष्ट्य पर भी आंच नहीं आयी। यह बात दूसरी है कि बाद में यह मत बदल गया और साहित्यिक कट्टरता की शुरुआत हुई। यहां इस तथ्य की पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं है कि लेनिन की इस साहित्यिक उदारता के साथ-साथ वह क्रांतिधर्मी सिद्धांत तो था ही जो मनुष्य मुक्ति की संभावना और नयी संस्कृति के दरवाजे खोल रहा था। तब के दिनों में हिंदी का ऐसा साहित्यकार पाना कठिन था जो या तो लेनिन के उदार व्यक्तित्व या एक नये विचार से प्रभावित न हुआ हो।

भारतीय साहित्य में मार्क्स और लेनिन के प्रभाव ने प्रगतिवादी धारा

लिए यह स्वीकार-सा कर लिया गया है कि यहां के मनुष्य में परिवर्तन और मानवीय गरिमा के भाव का उन्नत अंश अजन्मा ही रहा होगा। लेकिन जैसे तरंगहीन जलाशय की कल्पना कठिन है उसी तरह शायद यह सोचना मुश्किल हो कि मनुष्य अपरिवर्तनशील इतिहास का वजन ढोता रहेगा। कम ज्यादा यह इस प्रांत के लिए भी सत्य है। तब्दीली की जो इच्छा सारे देश में रंग ला रही थी वह इस प्रांत में भी मौजूद थी यद्यपि उसे खुला, उग्र रूप लेने में देर लग गयी, क्योंकि एक तो यह पूरा प्रांत छोटे-छोटे भू-भागों में बंटा था जो केवल भूगोल तक ही अपना असर नहीं रखता, मनुष्य को छोटे-छोटे आर्थिक, राजनैतिक और जय-पराजय की दुनिया में बांट देता था। दूसरे इन भू-भागों के छोटे-बड़े सामंत और नृपति अंग्रेजी हुक्मरानों की प्रसन्नता और अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए जनता को तोड़ना जरूरी समझते थे। फिर भी मनुष्य के पास जो सामाजिकता और अग्नि है, और जो सब कहीं है वह अंग्रेजों और राजाओं के क्रूर और जनता को विभाजित करनेवाले षड्यंत्रों के चलते नहीं बुझी। राजाओं के दरबारी कवि तक अंग्रेजी साम्राज्यवाद और अनैतिक सामंती परंपराओं का विरोध करने लगे। राजस्थान के एक पुराने कवि बांकीदास ने एक ही पंक्ति में अंग्रेजी साम्राज्यवाद के सारे पाखंड और सुधारवादी दंभ का उद्घाटन कर दिया :

आयो इंगरेज मुलक रे ऊपर, आ हंस लीधा खेंचि उरा

धीरे-धीरे यह नाराजी साहित्य में फैलने लगी। १९३७ में प्रजामंडल की स्थापना के बाद अंग्रेजी हुकूमत को बदलने के लिए एक प्रचंड इच्छा-शक्ति नजर आने लगी। यह इच्छा-शक्ति महज तब्दीली की अंधी और रूमानी कामना नहीं थी बल्कि निहित स्वार्थवाली सारी सामाजिक शक्तियों के खिलाफ बगावत थी। बगावत की शुरुआत का यह स्वर स्व० जयनारायण व्यास की इन काव्य-पंक्तियों में द्रष्टव्य है :

> **बाकी मत रख खूब सता ले, खूब दिखा ले अपना पशु-बल**
> **निर्बल का बल देख रहा है, तेरे सब कुकृत्य को प्रति पल**
> **अन्न विहीन उदर की आहें, दावानल से बन कर भीषण**
> **भस्मिभूत कर देंगी उनको, जो दीनों का करते शोषण**

कल ही तुम पर गाज गिरेगा, तेरा सभी समाज गिरेगा
तख्त गिरेगा, ताज गिरेगा, नहीं रहेगी तेरी सत्ता
बस्ती तो आजाद रहेगी, जालिम तेरे सब जुल्मों की
उसमे कायम याद रहेगी—

इसी चेतना को एक पूरे ध्वंस के लिए पुकारकर राजस्थानी के एक प्रखर कवि 'काला बादल' ने यह पंक्ति लिखी : 'काला बादला। बरसादे र बलती आग' (काले बादल, अग्नि वर्षा करो)।

बाद मे सुधींद्र ने 'प्रलय वीणा' मे एक पूरे राजनैतिक स्वर को उठने दिया और उसके बाद राजस्थान की बिखरी हुई छोटी-छोटी रियासतो और रजवाडो मे क्रांतिकारी कविता का एक पूरा युग ही आ गया।

इस युग के कविगणो मे मुख्य रूप से सुमनेश जोशी, मेघराज 'मुकुल', गणपतचद भंडारी, धनश्याम 'शलभ', प्रकाश 'आतुर', रणजीत, गगाराम पथिक, रामनाथ 'कमलाकर' और राजस्थानी में गणेशीलाल व्यास, सत्यप्रकाश जोशी, कन्हैयालाल सेठिया, गजानन वर्मा, रेवतदान चारण 'कल्पित', भीम पड्या उल्लेखनीय है। आज के बेहद बिखरे और बदलते हुए काव्य-सदर्भ मे आज भी राजस्थान के कुछ कवि गहरी सामाजिक चेतना को काव्य का सार्थक तत्व मानते हैं और अपनी कविता को नितात ऊल-जुलूल बकवास नही होने देना चाहते। उन कवियो में विजेंद्र, वीर सक्सेना, रणजीत, जयसिंह 'नीरज', जुगमदिर तायल, ऋतुराज मुख्य हैं। रणजीत बिना किसी लाग लपेट के 'क्रातिधर्मी (मार्क्सवादी अर्थ में) कविताएं लिखते है जो उन्होने अपने काव्य-संकलन 'ये सपने ये प्रेत' की भूमिका मे भी कहा है। विजेंद्र की कविता में इधर-उधर एक स्पष्ट समाजवादी आस्था का स्वर सुनायी देता है लेकिन वह कविता की मरजाद नही तोडता। शेष कवि 'नाराज' कवियो की श्रेणी मे हैं जो सभी प्रकार की क्रूरता का विरोध करते हैं।

देश मे विश्वविद्यालयीय आलोचना का जैसा भंवर-जाल फैला है उससे राजस्थान बचा नही है फिर भी मैं तीन-चार शुद्ध और होशियार आलोचकों का नाम ले सकता हूं (जो बहुत कम कविताएं, कहानियां, उपन्यास लिखते हैं इसलिए शुद्ध) डा० विश्वभर उपाध्याय, नवलकिशोर, हीरालाल भारद्वाज और डा० जगदीश जोशी—कवि आलोचकों मे विजेंद्र और

[illegible]

[illegible] से शामिल नहीं होगा। यह अमरीका में होता रहता है और अम-रीका की ही वह अपनी प्रतिस्पर्धी [illegible] है। साहित्य की दुनिया भी पिछले पचास वर्षों की दुनिया से बहुत बदल गयी है। प्रतिबद्धता का प्रश्न बेहद उलझ गया है और जब जब कविकार दल या उस राजनैतिक दल या धर्म या दर्शन के प्रति प्रतिबद्ध हुआ है उसे अन्त में यह आत्म-समर्पण एक ज्यादा स्थिति-जैसा लगा है। इसलिए यह अच्छा है कि आज लेनिन की परंपरा में ही हम यह प्रश्न पूछें कि साहित्यकार की प्रतिबद्धता किसके साथ हो। जैसे इस देश में यह पूछा जाता है कि यदि गांधी होते तो वह क्या करते और उत्तर होता है— अमुक-अमुक आचरण करते। उसी सिल-सिले में मैं यह पूछता हूँ कि यदि पास्तरनाक लेनिन के जमाने में होते या दूसरे नौजवान कृतिकार रचना-स्वातंत्र्य की माँग करते तो क्या होता? मेरा खयाल है लेनिन के पास जो मस्तिष्क और मन था और व्यक्ति की बड़ी उस सबके होते वह लेखक की निजी दुनिया को शायद उससे नहीं छीनते। वस्तुतः आज मार्क्सवाद का भी संकुचित और क्रूर रूप असहनीय होगा। 'विद्रोह' का अर्थ भी आज बदल गया है। गरीब राष्ट्रों का विरोध अब धनाढ्य वर्गों के राष्ट्रों में शामिल होने के लिए होता है गरीब आदमी अमीर होने के लिए—तेवर बदलता है। सम्पन्नता तथा प्रचुरता के बीचो-बीच पुकारते हुए लोग एक कंगाली और यातना के दरवाजे तक जाने के लिए उद्विग्न हैं। आज प्रतिबद्धता की बहस फिजूल-सी लगने लग गयी है क्योंकि प्रतिबद्धता के चलते एक क्रूर सैद्धान्तिकता ने जन्म लिया है जिसमें दृष्टिहीन लोगों ने दृष्टिवान लोगों को काफी सताया है।

रामदेव आचार्य आलोचना के सामाजिक आयामों को उभारते हैं।

लेनिन के राजनैतिक और सामाजिक दर्शन की स्थापना को लगभग ५० वर्ष हो गये हैं। इन पचास वर्षों में दुनिया लगभग एक 'मोहभंग' की स्थिति तक आ गयी है। एक अर्थ में इतिहास ने अपने सारे रहस्य खोल दिये हैं, शब्दों की जीवन बहुत कम हो गयी है और सभ्यता एक बर्बर शब्द लगने लग गया है। रूस के अनेक सामाजिक, राजनैतिक सदर्भों का औचित्य, फैलती हुई स्वातन्त्र्य-कामना और मनुष्य की प्रतिष्ठा के प्रसंग में पूछा जाने लगा है। एक वैज्ञानिक विधि और तर्क-संगति की क्रूरता भी अब नजर आने लगी है। दुनिया की बिरादरी में रूस अब बहुत गरीब मुल्कों में शामिल नहीं होता। वह अमरीका से होड़ लगाता है और अमरीका को ही वह अपना प्रतिस्पर्धी मानता है। साहित्य की दुनिया भी पिछले पचास वर्षों की दुनिया से बहुत बदल गयी है। प्रतिबद्धता का प्रश्न बेहद उलझ गया है और जब-जब कृतिकार इस या उस राजनैतिक दल या धर्म या दर्शन के प्रति प्रतिबद्ध हुआ है उसे अंत में यह आत्म-समर्पण एक जादुई स्थिति-जैसा लगा है। इसलिए यह अच्छा है कि आज लेनिन की परंपरा में ही हम यह प्रश्न पूछें कि साहित्यकार की प्रतिबद्धता किसके साथ हो। जैसे इस देश में यह पूछा जाता है कि यदि गांधी होते तो वह क्या करते और उत्तर होता है—अमुक-अमुक आचरण करते। उसी सिलसिले में मैं यह पूछता हूं कि यदि पास्तरनाक लेनिन के जमाने में होते या दूसरे नौजवान कृतिकार रचना-स्वातन्त्र्य की माग करते तो क्या होता? मेरा ख्याल है लेनिन के पास जो मस्तिष्क और मन था और व्यक्ति की कद्र थी उन सबके होते वह लेखक की निजी दुनिया को शायद उससे नहीं छीनते। वस्तुतः आज मार्क्सवाद का भी सकुचित और क्रूर रूप असहनीय होगा। 'विद्रोह' का अर्थ भी आज बदल गया है। गरीब राष्ट्रों का विरोध अब धनाढ्य वर्गों के राष्ट्रों में शामिल होने के लिए होता है गरीब आदमी अमीर होने के लिए—तेवर बदलता है। सपन्नता तथा प्रचुरता के बीचो-बीच पुकारते हुए लोग एक कगाली और यातना के दरवाजे तक जाने के लिए उद्विग्न हैं। आज प्रतिबद्धता की बहस पिजूल-सी लगने लग गयी है क्योंकि प्रतिबद्धता के चलते एक क्रूर सैद्धांतिकता ने जन्म लिया है जिसमें दृष्टिहीन लोगों ने दृष्टिवान लोगों को काफी सताया है।

कल ही तुम पर गाज गिरेगा, तेरा सभी समाज गिरेगा
तख्त गिरेगा, ताज गिरेगा, नहीं रहेगी तेरी सत्ता
बस्ती तो आजाद रहेगी, जालिम तेरे सब जुल्मों को
उसमे कायम याद रहेगी—

इसी चेतना को एक पूरे ध्वस के लिए पुकारकर राजस्थानी के एक प्रखर कवि 'काला बादल' ने यह पक्ति लिखी 'काला बादला। बरसादे र बलती आग' (काले बादल, अग्नि वर्षा करो)।

बाद मे सुधीद्र ने 'प्रलय वीणा' मे एक पूरे राजनैतिक स्वर को उठने दिया और उसके बाद राजस्थान की बिखरी हुई छोटी-छोटी रियासतो और रजवाडो मे क्रातिकारी कविता का एक पूरा युग ही आ गया।

इस युग के कविगणो मे मुख्य रूप से सुमनेश जोशी, मेघराज 'मुकुल', गणपतचद भडारी, घनश्याम 'शलभ', प्रकाश 'आतुर', रणजीत, गंगाराम पथिक, रामनाथ 'कमलाकर' और राजस्थानी में गणेशीलाल व्यास, सत्यप्रकाश जोशी, कन्हैयालाल सेठिया, गजानन वर्मा, रेवतदान चारण 'कल्पित', भीम पड्या उल्लेखनीय हैं। आज के बेहद बिखरे और बदलते हुए काव्य-सदर्भ में आज भी राजस्थान के कुछ कवि गहरी सामाजिक चेतना को काव्य का सार्थक तत्व मानते हैं और अपनी कविता को नितात ऊल-जुलूल बकवास नही होने देना चाहते। उन कवियो में विजेंद्र, वीर सक्सेना, रणजीत, जयसिंह 'नीरज', जुगमदिर तायल, ऋतुराज मुख्य हैं। रणजीत बिना किसी लाग लपेट के 'क्रातिधर्मी (मार्क्सवादी अर्थ में) कविताएं लिखते हैं जो उन्होंने अपने काव्य-सकलन 'ये सपने ये प्रेत' की भूमिका मे भी कहा है। विजेंद्र की कविता मे इधर-उधर एक स्पष्ट समाजवादी आस्था का स्वर सुनायी देता है लेकिन वह कविता की मरजाद नही तोडता। शेष कवि 'नाराज' कवियो की श्रेणी मे हैं जो सभी प्रकार की क्रूरता का विरोध करते हैं।

देश मे विश्वविद्यालयीय आलोचना का जैसा भंवर-जाल फैला है उससे राजस्थान बचा नही है फिर भी मैं तीन-चार शुद्ध और होनिहार आलोचकों का नाम ले सकता हूं (जो बहुत कम कविताएं, कहानियां, उपन्यास लिखते हैं इसलिए शुद्ध) डा० विश्वभर उपाध्याय, नवलकिशोर, होरीलाल भारद्वाज और डा० जगदीश जोशी—कवि आलोचकों मे विजेंद्र और

लेनिन ने उदार सामाजिकता और मनुष्य-स्वायत्तता में विश्वास किया और इन्ही कारणों से वह दुनिया के साहित्यकारों को आकृष्ट कर सके, यदि दुनिया में ये दो सूत्रियां निश्छलता के साथ अपनायी जा सकें तो मनुष्य का मन प्याज के छिलकों की तरह नहीं उतरेगा।

मार्क्स के नजरिये में गोशों और इजाफा भी किया। लेनिन ने जो साम्राज्य-वादी निजाम यानी एक मुल्क के दूसरे मुल्क पर कब्जा करने के अमल को कौमी सरमायादारी के उरूज का आखिरी मुकाम करार दिया। इस तरह गुलाम मुल्कों में कौमी आजादी की जंग दरअस्ल सामराजी मुल्कों के मजदूर तबकों की जंग ही का एक हिस्सा बन गयी। हर सामराजी मुल्क के मजदूर और दबे कुचले तबके मगलूबा मुल्कों के आजादी के लिए दोनों तबकों के हलीफ हो गये और यह लड़ाई बराबर बराबर गालिब और मगलूब मुल्कों में गालिब और मगलूब तबकों के दरम्यान लड़ी जाने लगी। यह उन अल्फाज की अमली तफसीर थी जिन पर मार्क्स ने अपने कम्युनिस्ट मेनीफेस्टो को खत्म किया था : "तमाम मुल्कों के मेहनतकशो, एक हो।"

इस जुमले के दूररस अजीमुश्शान असरात मुरत्तब हुए। मुल्क-कौम-नस्ल-मजहब रंग और कौमियत की तमाम सरहदों को काटती हुई यह आवाज मुल्कों-मुल्कों गूंज उठी। हर मुल्क के पसमांदा तबकों को उम्मीद की किरन नजर आयी और जब लेनिन की रहनुमाई में जंग फतह की पहली मंजिल में दाखिल हुई और क्रेमलिन पर सुर्ख झंडा लहराया तो यह अह-सास आम होने लगा कि आखिरकार सुल्तानी-ए-जमहूर का जमाना शुरू हो गया है और हर नक्शे कुहन को मिटाना एक तारीखी फरीजा है। दर-अस्ल 'जमहूर' लफ्ज के मआनी ही बदल गये। वे लोग जो हर समाज में अकसरियत में होते हैं और जिन्हें कीड़े-मकोड़े समझा जाता रहा है, जिन का न तारीख में कोई हिस्सा है, न तहजीब में, जिनके लिए न इल्म की दौलत है, न आराम की मुसर्रत, पहली बार कम-से-कम हस्सास शाइरों और अदीबों को उनके सर पर ताज नजर आने लगा क्योंकि उन्हीं के हाथ में तारीख की बागडोर थी और उनकी मेहनत और मजलूमियत का जहर दूसरों के लिए अमृत बन गया था।

इस नये तसव्वुर ने अदब के मैदान में इंकलाबी कारनामा सर अंजाम दिया। इस कारनामे के तीन पहलू थे। पहला सोसायटी और समाजी इरतका के नये इरफान से इबारत था जिसने अदब और दानिश के दरम्यानी रिश्तों की नयी बसीरत अता की। इंसानी इरतका को हादसे के बजाय इल्मो-आगही का मौजू बना दिया जिसे जाना जा सकता है और जिसके बारे में पेशगोई और तैयारी की जा सकती है।

निज्म अकीदा या तावीज नही, इल्म है और इसका अतलाक आसान पेचीदा अमल है। इसलिए अतलाकी तंकीद मे गलतिया भी हुई र मार्क्सिज्म लेनिनिज्म के जरिये अदबी तंकीद ने नया उफुक पाया। र और अफसानानिगार के फिक्रो-दानिश का हल्का वसी हुआ और के मौजूआत मे एक नजरयाती हुस्न पैदा हुआ जहा ये नजरयाती जम मांगे का था वहा नकली मुलम्मे की तरह उतर गया जहा उसके पीछे ी शख्सियत का शऊर और जज्बा कारफरमा था वहा उसने फन को ी वालीदगी, रफअत और तवानाई हासिल की।

दूसरे पहलू ने अफसाने और नाविल के लिए नयी वुसअत फराहम कर ी। फर्द के रिश्ते कभी भी इस कदर गहराई के साथ समाजी और तब-ाती हकीकतो से उस्तवार नही हुए थे। यह ख्याल कि लेनिन ने फर्द को हज़ तबकाती जद्दोजहद का मजहूल आलयेकार समझा सही नही है। लेनिन का यह मकसद भी नही था कि तारीख मे फर्द के शऊर और अमल का सिरे से कोई हिस्सा ही नही। हा वह तारीख और तबके के दाइरे मे रहकर फर्द की खुदमुख्तारी के कायल थे अलबत्ता तबके के ये दाइरे फर्द का शऊर और इरादा तोड भी सकते हैं और खुद लेनिन ने अपनी तब-काती दीवार को तोडा और अपना रिश्ता निचले तबको से इस तरह जोडा कि आखिर दम तक इन्ही तबको का जुज़ बनकर रहे।

फर्द ख्वाह कितना ही नेक या मुस्तइद क्यो न हो तन्हा तारीख को बिसात नही उलट सकता। उसकी पुश्त पर पसमादा और तारीखी एतबार से फैसलाकुन तबको की ताकत होना जरूरी है। लेनिनिज्म हीरो से मुंकिर नही मगर हीरो खला का हादसा नही तारीखी तकाजों का नतीजा होता है। इसीलिए लेनिनिज्म न अनारकिज्म बन सका, न गांधीवाद। प्रेमचद के आदर्शवादी हीरो और इकबाल के मर्दे-मोमिन दोनो से आगे बढ़कर लेनिनिज्म एक नयी शख्सियत तक पहुचा जो तसव्वुर परस्त की शख्सियत न थी, हकीकी की शख्सियत थी। यह हकीकत से बेनियाज नही थी बल्कि हकीकतो की सगीन चटानें सर करते ख्वाबो के ताबिदा सितारो तक पहुचती थी। इस शख्सियत की सदानी पौधा और पाचवी दहाई के उर्दू अदब और खुसूसन अफसानवी अदब मे निखरी हुई है।

तीसरे पहलू यानी इन्सानियत और हकीकतपसदी के इम्तजाज की

थी कि अदब और ज़िंदगी, फ़न और दानिश का नया रिश्ता सामने आया।

लेनिन ने अमल को फ़िक्र की कसौटी साबित कर दिया। इंकलाबे रूस ने वाज़ेह तौर पर यह दिखा दिया कि इंकलाबी नज़रिया वही है जो मैदाने-अमल में पूरा उतरे और अमल सिर्फ़ नज़रियों के सच्चा या झूठा साबित करने का वसीला नहीं बल्कि इल्म का तनहा काबिले-एतबार ज़रिया है। हक़ायक़ आसमानों से हथियारबंद नहीं कूदते ज़िंदगी की कशमकश और रेल-पेल में पैदा होते हैं जो इस कशमकश में जितना करीब है और जितना गहरा मुशाहिदा रखता है उतना ही वह बसीरत से करीब है। अदब इस बसीरत का हिस्सा है और यह बसीरत सिर्फ़ समाज को देखते रहने से पैदा नहीं होती उसकी करवटों के महज़ मुशाहिदे से जन्म नहीं लेती बल्कि समाज के बदलने के अमल में शरीक होने से पैदा होती है। इल्म महज़ फ़िक्र नहीं बल्कि पूरी ज़िंदगी का निचोड़ है।

बद-किस्मती से मुद्दतों तक लेनिन के अगरात कबूल करनेवाले सिर्फ़ ये समझते रहे कि अदब में महज़ सियासत के और वह भी हंगामी सियासत के मौज़ूआत का ज़िक्र करने से लेनिन की साइंटिफिक सक़ाफ़त की मीरास का हक़ अदा हो सकता है। हकीकत यह है कि मार्क्सी लेनिनी तालीमात ने इदराक, अहसास और फ़न का दाइरा सियासी-हंगामी मौज़ूआत से कहीं वसी-तर कर दिया। अब अदीब मुहल्लिमे-अखलाक का नायब-मनाब नहीं था। वह न दरबारी गवैया था, न साहिबाने-इक़तदार की निगाहे-करम का मुहताज। आज उसे पहली बार समाजी मंसब का नया खिलअत अता हुआ था और वह था इंकलाबी का मंसब। वह महज़ इंकलाब का मुगन्नी नहीं था खुद इंकलाबी था। लेनिन की तालीमात ने मुद्दतों बाद अदीब और इंसान की शख़सियतों को एक कर दिया था।

उर्दू अदब में इस अज़ीमुश्शान तब्दीली की मिसालें देना शायद ज़रूरी नहीं है। ये मिसालें बहुत वाज़ेह हैं। उर्दू तनक़ीद ने नया लबो-लहजा पाया। पहली बार अदब का रिश्ता समाजी तारीख से मुंज़बित हुआ और तकाबुली मुतालए या महज़ ज़ुबानो-बयान की गलतियों की गिरिफ़्त के बजाय अदब में इज़हार पानेवाले हर ख़याल की समाजी और तबक़ेवारी बुनियादें तलाश करने की कोशिश होने लगी मगर मार्क्सियत

लेनिनिज़्म अक़ीदा या तावीज़ नहीं, इल्म है और इसका अतलाक़ आसान नहीं पेचीदा अमल है। इसलिए अदबी तन्क़ीद में ग़लतियाँ भी हुईं मगर मार्क्सिज़्म लेनिनिज़्म के ज़रिये अदबी तन्क़ीद ने नया उफ़ुक़ पाया। शाइर और अफ़सानानिगार के फ़िक्रो-दानिश का हल्क़ा वसी हुआ और उनके मौज़ूआत में एक नज़रयाती हुस्न पैदा हुआ जहाँ ये नज़रयाती हुस्न मांगे का था वहाँ नक़ली मुलम्मे की तरह उतर गया जहाँ उसके पीछे पूरी शख़्सियत का शऊर और जज़्बा कारफ़रमा था वहाँ उसने फ़न को नयी बालीदगी, रफ़अत और तवानाई हासिल की।

दूसरे पहलू ने अफ़साने और नाविल के लिए नयी वुसअत फ़राहम कर दी। फ़र्द के रिश्ते कभी भी इस क़दर गहराई के साथ समाजी और तबक़ाती हक़ीक़तों से उस्तवार नहीं हुए थे। यह ख़याल कि लेनिन ने फ़र्द को महज़ तबक़ाती जद्दोजहद का मजहूल आलयेकार समझा सही नहीं है। लेनिन का यह मक़सद भी नहीं था कि तारीख़ में फ़र्द के शऊर और अमल का सिरे से कोई हिस्सा ही नहीं। हाँ वह तारीख़ और तबक़े के दाइरे में रहकर फ़र्द की ख़ुदमुख़्तारी के क़ायल थे अलबत्ता तबक़े के ये दाइरे फ़र्द का शऊर और इरादा तोड़ भी सकते हैं और ख़ुद लेनिन ने अपनी तबक़ाती दीवार को तोड़ा और अपना रिश्ता निचले तबक़ों से इस तरह जोड़ा कि आख़िर दम तक इन्हीं तबक़ों का जुज़ बनकर रहे।

फ़र्द ख़्वाह कितना ही नेक या मुस्तइद क्यों न हो तन्हा तारीख़ की बिसात नहीं उलट सकता। उसकी पुश्त पर पसमांदा और तारीख़ी रफ़्तार में फ़ैसलाकुन तबक़ों की ताक़त होना ज़रूरी है। लेनिनिज़्म हीरो से मुनकिर नहीं मगर हीरो ख़ला का हादसा नहीं तारीख़ी तक़ाज़ों का नतीजा होता है। इसीलिए लेनिनिज़्म न अनारकिज़्म बन सका, न गांधीवाद। प्रेमचन्द के आदर्शवादी हीरो और इक़बाल के मर्दे-मोमिन दोनों से आगे बढ़कर लेनिनिज़्म एक नयी शख़्सियत तक पहुँचा जो तसव्वुर परस्त की शख़्सियत न थी, इंक़लाबी की शख़्सियत थी। यह हक़ीक़त से बेनियाज़ नहीं थी बल्कि हक़ीक़तों की संगीन चटानें सर करके ख़्वाबों के ताबिंदा सितारों तक पहुँचती थी। इस शख़्सियत की ताबानी चौथी और पाँचवीं दहाई के उर्दू अदब और ख़ुसूसन अफ़सानवी अदब में बिखरी हुई है।

तीसरे पहलू यानी इन्सानियत और हक़ीक़तपसंदी के इम्तिज़ाज की

इसकी इसी तरह हुई। हकीकत का गहरा और सच्चा इरफान इंसान को बताता है कि समाज तब्दीली के लिए बेकरार है। हाल गंदगी और घुटन से मामूर है और उसे बदलने के लिए हर फनकार तड़प उठता है। लेनिन ने बार-बार इस बात पर जोर दिया कि अगर आर्टिस्ट जो कुछ देखता है सिर्फ वही ईमानदारी से दिखा सके और संजीदगी की उस मुकद्दस ख्वाहिश को अपने पढ़ने और सुननेवालों में बेदार कर सके तो वह अपने मंसब का बड़ा हिस्सा पूरा कर सकता है। इसीलिए वह आर्टिस्ट भी जो नजरयाती तौर पर लेनिन के साथ न थे, लेनिन को सिर्फ इसीलिए पसंद थे कि उन्होंने समाज का सही और पूरा नक्शा खींचा और इंकलाबी आहंग बेदार किया जिसकी बुनियाद पर इंकलाबी अपने फिक्रो अमल की बुनयादें उस्तुवार कर सकते हैं। टालस्टाय ने अपने नाविलों में रूस के किसानों की हालत जिस तरह बयान की है वह इस हकीकत-निगारी की एक अच्छी मिसाल है। लेकिन अच्छा फनकार महज हकीकत की इस फोटोग्राफी में घिरकर नहीं रह जाता वह इनमें घिरकर भी सितारों पर कमद डालना चाहता है। उसके अंदर छुपी हुई इंकलाबी रूह बार-बार उसे नये ख्वाब देखने पर मजबूर करती है। यह ख्वाब तखय्युल और जज्बे के सहारे देखे जाते हैं और यही दो सहारे हैं जो जहन्नुम की आग को गुलजार बना देते हैं।

लेनिन जिनका नाम आज हम अहतराम से ले रहे हैं एक मफरूर मुजरिम की तरह जिंदा रहे। अमली जिंदगी का बड़ा हिस्सा या रूपोशी की हालत में गुजरा या हालते फरार में। एक शहर से दूसरे शहर, एक मुल्क से दूसरे मुल्क की इसलिए खाक छाननी पड़ी कि जार रूस के गुर्गों के ही नहीं सरमायादार मुल्कों की हकूमतों के नजदीक भी इंसानी आजादी और मजदूरों की हकूमत के बारे में लेनिन के तसव्वुरात बागियाना और खतरनाक थे और इस वक्त भी जब लेनिन को हम 'काबिले अहतराम' बना रहे हैं यह बात याद रखने की है कि हम लेनिन को सोवियत रूस के पहले फरमा-रवा की हैसियत से याद नहीं कर रहे हैं बल्कि उस अजीम इंकलाबी लेनिन को याद कर रहे हैं जिसने पहली बार दबे-कुचले इंसानों की हिमायत में सर-धड़ की बाजी लगायी और मजदूर तबके की रहनुमाई में पहली इश्तराकी हकूमत कायम की। आज जो लोग लेनिन का नाम लेकर लेनिन की मीरास से मुह मोड़ लेना चाहते हैं मजदूर तबके

की रहनुमाई को तसलीम करते हुए हिचकिचाते हैं या तक्फ़ाना जग का नेज़ करने के बजाय उसकी पर्दापोशी करना चाहते हैं, वे लेनिन के साथ इंसाफ़ नहीं करते। लेनिन ज़िंदगी-भर मसाइब और तकालीफ़ की जहन्नुमों से गुज़रे। वह कौन-सी रोशनी थी जो उन्हें इन तारीकियों में हौसला देती रही। वह रोशनी थी मुस्तक़बिल पर एतमाद की रोशनी और मुस्तक़बिल पर यह एतमाद महज़ जज़्बे और शाइराना तख़य्युल का नतीजा न था मार्क्सी साइंस की बसीरत से पैदा हुआ था। लेकिन इस बसीरत पर जमे रहने के लिए जज़्बा दरकार है, वही जज़्बा जो रूमानियत की बुनियाद है। लेनिन की राह पर चलकर ही बीसवीं सदी का इंकलाबी चे ग्वारा यह कह सका कि "हर इंकलाबी सिर्फ़ मुहब्बत के जज़्बे से मुताहर्रिक रहता है...उसे अपने अहसासात इतने लतीफ़ बना लेने चाहिए कि अगर दुनिया में कहीं भी एक आदमी का क़त्ल हो तो उसका दिल तड़प उठे और अगर दुनिया के किसी कोने में आज़ादी का झंडा बुलंद हो तो उसका सीना ख़ुशी से फूल जाये।" मुहब्बत और दर्दमंदी का यह जज़्बा जो अंधी जज़्बातियत नहीं बल्कि दर्द के मोहकम रिश्ते पर क़ायम है, लेनिन की देन है।

जो लोग अदब को फ़िक्रो-दानिश का एक हिस्सा मानते हैं उनके नज़दीक लेनिन ने फ़िक्रो-दानिश को जो कुछ दिया वह अदब पर असर-अंदाज़ हुआ। लेनिन की आवाज़ ने पहली बार अदब को कायनाती फ़िक्र का हिस्सा बना दिया और वह दीवारें जो साइंस, तारीख़ और अदब के दरम्यान थीं अचानक गिरने लगीं। आजतक अदीब सिर्फ़ मुग़न्नी था और अलफ़ाज़ महज़ ख़याल। मगर ये नग़मे, ये अलफ़ाज़ अगर असरी हक़ीक़तों से मामूर हों तो अंगारों की तरह लौ दे उठते हैं और उनसे ख़यालात के फ़ानूस एक के बाद एक रोशन होते चले जाते हैं। आख़िरकार मसा-सान की इस रोशनी में जज़्बे-अमल बेदार होता है और अलफ़ाज़ और नग़मों से जगाया हुआ अमल का तिलिस्म ज़िंदगी और असरी हक़ीक़त में असर क़बूल करके ख़ुद ज़िंदगी और असरी हक़ीक़त को बदलने में कामयाब हो जाता है। यह लेनिन के मौजज़े-फ़िक्रो-अमल का नुमाया था जिसने असरे-हाज़िर की दानिश को नयी जहत बख़्श दी।

और आख़िर में अदब के बैनुलअक़वामी शऊर के बारे में अदब को

कौम का नगमा गानेवाले पहले भी गुजरे हैं लेनिन कौम और मुल्क की नस्ली और जुगराफियाई हदबंदियों को तोड़कर अदब के दायरे को पूरी दुनिया के मजलूमों तक फैला देने का था। लेनिन के फिक्रो-अमल से पैदा हुई। मार्क्स ने दुनिया के मेहनतकशों को एक होने के लिए ललकारा था। लेनिन ने इस वहदत को नया तसव्वुर बख्शा और यह नया तसव्वुर हर कौम की तहज़ीब, जुबान और अदब या यूं कहिए कि हर कौम बल्कि हर तहज़ीबी अकल्लियत की इंफरादियत के एहतराम से पैदा हुआ था। सोवियत रूस में मुख्तलिफ लिसानी और तहज़ीबी, कौमियतें आबाद हैं। लेनिन ने इन कौमियतों पर जबरदस्ती कोई तहज़ीब या कोई जुबान ठूंसना पसंद नहीं किया बल्कि हर इलाके की तहज़ीब और जुबान को फरोग दिया और हर कौमियत को मुकम्मल आज़ादी दी। मुहब्बत इख्तियार और आज़ादी से पैदा होती है। जब्र सिर्फ नफरत को जन्म देता है और सच्ची जमहूरियत की बुनियाद सिर्फ मुहब्बत और एहतरामे-बाहम पर रखी जा सकती है।

आज के हिंदुस्तान में जब उर्दू का अदीब और दानिश्वर ही नहीं हर उर्दूदां अपनी जुबान के खिलाफ ना-इंसाफी और जुल्म का शिकार है। लेनिन की ये तालीमात और भी ज़्यादा कीमती हैं जब उनकी जुबान में इब्तदाई और सानवी तालीम का दरवाज़ा बंद किया जाता है तो वह अच्छी तरह जानते हैं कि यह जुल्म भी दर-अस्ल समाजी ना-इंसाफी और इस्तब्दाद के निज़ाम का एक हिस्सा है जिसे बदलने के लिए लेनिन ने अपनी ज़िंदगी के बेहतरीन साल जद्दोजहद की नज़्र किये और जिसका खातिमा सिर्फ इस इंकलाबी जद्दोजहद से मुमकिन है जो मजदूर और किसान तबकों की रहनुमाई में होगी और जिसमें सिर्फ अकल्लियतों की जान और ज़ुबान, तहज़ीब और तमद्दुन ही नहीं बल्कि पूरे मुल्क के पसमांदा और मज़लूम तबकों की निजात पोशीदा है। इस एतबार से लेनिन की मीरासें फिकरो-अमल उर्दूदानों के लिए महज़ एक अदबी परतो नहीं है बल्कि उनके यकीनो-एतमाद का एक जुज़ है उनके सफर का एक संगमील ही नहीं रास्ता दिखानेवाली रोशनी है। इसीलिए लेनिन और उनकी तालीमात उर्दू दुनिया के लिए माज़ी की मीरास नहीं मुस्तकबिल का इशारिया हैं।